भाग ७

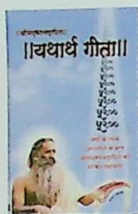
अमृतवाणी

गूढ़ पदों के सन्देश



स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

हमारे प्रकाशन



यथार्थ गीता -
'यथार्थ गीता' में श्रीकृष्ण की वाणी के आशय को भली प्रकार यथावत् समझाया है। यह एक कालजयी कृति है।

२८ भाषाओं में



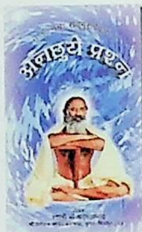
अंग क्यों फड़कते हैं और क्या कहते हैं? -
मानव शरीर के विभिन्न हिस्सों में होने वाले स्पन्दनों का कारण और उसके संकेतों का विश्लेषण किया गया है जो कि साधना में काफी सहायक है।

४ भाषाओं में



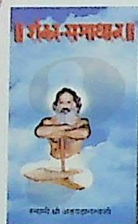
जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति -
पूज्य गुरु परमहंस स्वामी श्रीपरमानन्दजी महाराज के जीवन के वृत्तान्त, उनकी अनुभूतियों एवं उपदेशों को संकलित किया है। साधकों के लिए यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है।

४ भाषाओं में



अनछुए प्रश्न -
वर्ण, मूर्तिपूजा, ध्यान, हठ, चक्र-भेदन और योग जैसे विषयों को स्पष्ट कर भ्रमित समाज का मार्गदर्शन किया गया है।

३ भाषाओं में



शंका समाधान -
समाज में प्रचलित सभी कुरीति, रुढ़ि, आडम्बर और अन्धविश्वासों का शमन एवं समाधान किया है।

५ भाषाओं में



एकलव्य का अंगूठा -
शिक्षा-गुरु और सद्गुरु में अन्तर बतलाया गया है। शिक्षक, लोकजीवन की कला सिखाते हैं जबकि सद्गुरु जीवन में समृद्धि के साथ परमश्रेय की जागृति और उस परमपद की प्राप्ति कराते हैं जिससे पुरुष आवागमन से मुक्त हो जाता है।

३ भाषाओं में



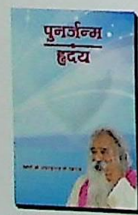
भजन किसका करें?-
लोग गाय, पीपल, देवी-देवताओं, भूत-भवानी की पूजा, धर्म के नाम पर कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी भ्रान्तियों का निवारण करते हुए स्पष्ट किया गया है कि सनातन धर्म क्या है? इष्ट कौन है?
भजन किसका करें व कैसे करें?

६ भाषाओं में



षोडशोपचार पूजन पद्धति -
इस पुस्तम में यह बताया गया है कि एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर कराकर, उस एक परमात्मा का चिन्तन सिखाना ही कर्मकाण्ड है।

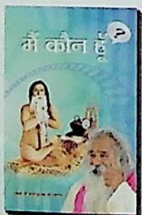
३ भाषाओं में



हिन्दी भाषा में

पुनर्जन्म
बौद्धिक स्तर पर यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। मनुष्य जन्मा, जीवन-यापन किया; शरीर छूटा, चला भी गया; कुछ समझ ही नहीं पाया कि पुनर्जन्म है या नहीं। किन्तु योगाभ्यास की एक निश्चित ऊँचाई से मनुष्य जब गुजरता है तो उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि पुनर्जन्म है? मैं क्या था? आगे कहाँ जाना है?

हृदय
शरीर में हृदय कहाँ है जिसमें परमात्मा का निवास है? हृदय का परिचय तथा परमात्मा को जानने की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डाला गया है। क्रमोन्नत तीन शरीर हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। क्रमशः कारण शरीर के अन्तिम स्तर पर साधन पहुँचता है, तहाँ ईश्वर का निवास है। यह पुस्तिका इन्हीं प्रश्नों का पूर्ण परिचय देती है।



हिन्दी भाषा में

मैं कौन हूँ?
जन्म से ही नाना प्रकार के सम्बन्धों में भ्रम हो जाता है कि मैं कौन हूँ? यह जिज्ञासा यौगिक है। 'वासांसि जीर्णानि.......'- शरीर एक वस्त्र है। यह शरीर छूटा, दूसरा मिला। तामस गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष पशु, कीट-पतंग इत्यादि अधम योनि प्राप्त करता है। राजसी गुण के कार्यकाल में वह मनुष्य तन पाता है। सात्त्विक गुण के कार्यकाल में देव इत्यादि उन्नत योनि पाता है- हर हालत में योनि पाता है। अतः यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों है कि मैं कौन हूँ? वास्तव में जब द्रष्टा यह आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है तो वही आपका वास्तविक स्वरूप है।

।। ॐ नमः सद्‌गुरुदेवाय ।।

अमृतवाणी

सन्तों के गूढ़ पदों के सन्देश

भाग – 7

पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के
मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन

लेखक–

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़, जिला– मीरजापुर
उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- 5, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत

प्रकाशक :
श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- 5, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत
दूरभाष- 022-28255300
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

संस्करण - प्रथम, गुरू पूर्णिमा सन् २०१५ - ५,००० प्रतियाँ
फेब्रुवारी, सन् २०१६ - ५,००० प्रतियाँ

मूल्य- रु.100/- मात्र

मुद्रकः
जॅक प्रिन्टर्स प्रा. लि.
जॅक कंपाऊंड, दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन,
भायखळा (पूर्व), मुम्बई-४०००२७, भारत
फोन नं. (0091-022) 23772222
ई-मेल - mail@jakprinters.com

ISBN 81-89308-95-5

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तस्प्रेरणा




गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्‌गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्‌गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्‌गुरु.........भारी।।

।। ॐ ।।




"आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च"

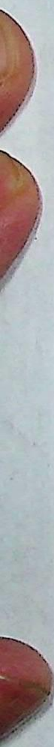


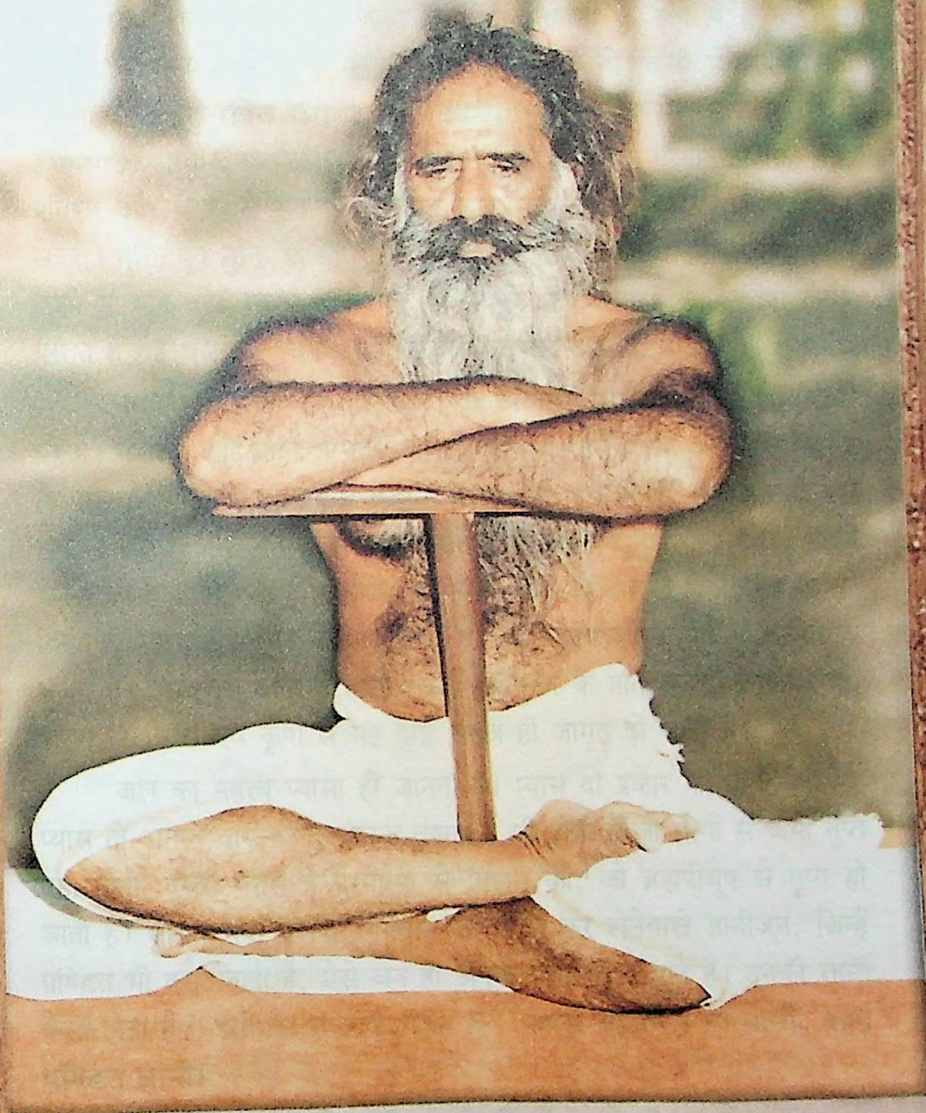
श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट





श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

निवेदन

धर्मानुरागी बहनो तथा भाइयो!

महापुरुषों के इन प्रेरक पदों में कोई चेतावनी के रूप में है तो कोई साधना के मध्य का; किसी में प्राप्ति का चित्रण है तो किसी में सद्गुरु की महिमा है– **'हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥'** *(मानस)*– परदुःखकातरता सन्तों का स्वभाव है। संसार के दरबार आपको पद, प्रतिष्ठा और वैभव दे सकते हैं, किन्तु जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त नहीं कर सकते। भुक्ति एवं मुक्ति के साथ आपको शाश्वत शान्ति तथा अनन्त जीवन प्रदान करने में यदि कोई सक्षम है तो वह है सद्गुरु का दरबार! यही संदेश लेकर प्रस्तुत है यह भजन – **'दरबार में सच्चे सद्गुरु के........'**।

भगवान का एक नाम अलख है। वह अवाङ्मनसगोचर– मन, इन्द्रियों से परे है। भगवान कोई कल्पना नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन है। उस दर्शन की विधि सद्गुरु के पास है। गीता में भगवान ने कहा– अर्जुन! तुम इन आँखों से मुझे नहीं देख सकते। लो, मैं तुम्हें वह दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे तुम मुझे देख सको। महर्षि व्यास की कृपा से वही दृष्टि संजय को मिली थी। जो अलख भगवत्स्वरूप को दिखा दे वह दृष्टि सद्गुरु के पास होती है। इस रहस्य को उद्घाटित करनेवाला भजन है– **'सद्गुरु अलख लखाया'**। महापुरुष के प्रति श्रद्धा, उनकी सेवा, शरण, सान्निध्य एवं कृपा से यह दृष्टि सहज ही जागृत हो जाती है।

जल का महत्त्व प्यासा ही जानता है। प्यास दो प्रकार की होती है। एक प्यास तो अनन्त वासनाओं, अनन्त तृष्णाओं की होती है जो भोगों से कभी तृप्त नहीं होती; दूसरी प्यास है परमात्मा से मिलन की, जो ब्रह्मपीयूष से तृप्त हो जाती है। साधनात्मक चलकर भगवान का दर्शन कर लेनेवाले ज्ञानीजन, जिन्हें पण्डित भी कहा जाता है, ऐसे जन ही अपनी प्यास बुझा पाते हैं। उनकी रहनी कैसी होती है?–इसी का संकेतक भजन है– **'प्यास बुझावै बिन पानी, कोई पण्डित ज्ञानी।'**

ईश्वर के प्रत्यक्षदर्शी ज्ञानीजनों के पास न तो विषयरूपी वारि है न ब्रह्मपीयूष ही उनसे भिन्न है, प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु उन्हें अप्राप्य नहीं है। यही तत्त्वदर्शी सद्गुरु हैं। **'को पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः'**– सृष्टि में पूजनीय

कौन है? शिवतत्त्व में प्रतिष्ठित महापुरुष! सद्‌गुरु! ध्यान सद्‌गुरु का किया जाता है। यही कबीर का आशय है कि **'कोई अपने में देखा साईं संत अतीत।'**

आरम्भ में प्रत्येक व्यक्ति साधन-भजन, इन्द्रिय-संयम अपने मन से करता है किन्तु सद्‌गुरु का स्वरूप हृदय में आते ही भजन जागृत हो जाता है। वह प्रभु आपकी आत्मा से जागृत होकर मार्गदर्शन करने लग जाते हैं। उस समय आपको देखना है कि भगवान चाहते क्या हैं? उनका आदेश समझते जायँ, पालन करते जायँ। आज्ञापालन ही भजन है।

जनसामान्य में कुतूहल रहता है कि लोग वैराग्य धारण क्यों करते हैं? इसमें कौन-सा सुख है? इसमें किया क्या जाता है?– इन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान इस भजन में है कि **'कबिरा कब से भया बैरागी।'** अनेक जन्मों के चले हुए पथिक अपना गंतव्य पा जाते हैं– **'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'**

जिसके हृदय में विरह, वैराग्य और तड़पन नहीं है, उस साधक के लिए भगवान भी नहीं हैं। विरह भगवद्‌प्रेम को जगाये रखता है, भगवान के चिन्तन में डूबकर लगने की क्षमता प्रदान करता है। यदि प्रभु के लिए ऐसी तड़प पैदा हो गयी है तो व्यक्ति को क्या करना चाहिए?– इसी का निर्देशक भजन है **'मंदिर दियना बार!'** बाहर दुनिया में कहीं मंदिर हैं ही नहीं। जिन्हें आप देखते हैं, उनमें उन प्रभु की स्मृति सँजोयी गयी है। उन प्रभु को जब कभी किसी ने पाया है तो हृदय-देश में ही पाया है। आप अपने हृदयरूपी मंदिर में भक्तिमणि दीपक जलाने का उपक्रम करें जिससे उस शाश्वत धाम को प्राप्त कर सकें जहाँ से आपका आगमन हुआ है। उस घर का परिचय और वहाँ तक पहुँचने का पाथेय लेकर प्रस्तुत है भजन **'वा घर की कोई सुध न बतावे।'** वहाँ तक पहुँचने का अधिकार आप सबको है किन्तु इसके लिए आवश्यक है चित्त का निर्मल होना। इसी के लिए संत कबीर आपसे पूछते हैं– **'चोलिया काहे न धुलाई?'**

कैसे धुलेगी चित्तरूपी यह चोली? कैसे छूटेंगे इस पर पड़े हुए जन्म-जन्मान्तरों के विषय-वासना के दाग? इसका सरल-सा उपाय इस पद में देखें। इसी उद्‌बोधन और प्रोत्साहन के साथ.....

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

।। ॐ ।।

ॐ

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥8/12॥

सब इन्द्रियों के दरवाजों को रोककर अर्थात् वासनाओं से अलग रहकर, मन को हृदय में स्थित करके (ध्यान हृदय में ही धरा जाता है, बाहर नहीं। पूजा बाहर नहीं होती), प्राण अर्थात् अन्तःकरण के व्यापार को मस्तिष्क में निरोधकर योग-धारणा में स्थित होकर (योग को धारण किये रहना है, दूसरा तरीका नहीं है)–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥8/13॥

जो पुरुष **'ओम् इति'**– ओम् इतना ही, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, इसका जप तथा मेरा स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण एक योगेश्वर, परमतत्त्व में स्थित महापुरुष, सद्गुरु थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने बताया कि 'ओम्' अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, तू इसका जप कर और ध्यान मेरा कर। प्राप्ति के हर महापुरुष का नाम वही होता है जिसे वह प्राप्त है, जिसमें वह विलय है इसलिये नाम ओम् बताया और रूप अपना। योगेश्वर ने 'कृष्ण-कृष्ण' जपने का निर्देश नहीं दिया लेकिन कालान्तर में भावुकों ने उनका भी नाम जपना आरम्भ कर दिया और अपनी श्रद्धा के अनुसार उसका फल भी पाते हैं; जैसा कि, मनुष्य की श्रद्धा जहाँ टिक जाती है वहाँ मैं ही उसकी श्रद्धा को पुष्ट करता तथा मैं ही फल का विधान भी करता हूँ।

*(**'यथार्थ गीता'** से उद्धृत)*

दरबार में सच्चे सद्‌गुरु के

(दिनांक 29-11-2009 ई० को चंदौली, उ० प्र० की विशाल जनसभा में पूज्य स्वामीजी का प्रवचन।)

दरबार बहुत देखे हमने, तेरे जैसा दरबार नहीं।
जब शीश झुका गुरु चरनन में, तब जन के सिर कोई भार नहीं।।

दरबार में सच्चे सद्‌गुरु के, दुःख-दर्द मिटाये जाते हैं,
दुनिया के सताये लोग यहाँ, सीने से लगाये जाते हैं।
यह महफिल है मस्तानों की, हर शख्स यहाँ है मतवाला,
भर-भर के जाम इबादत के, यहाँ सबको पिलाये जाते हैं।
ऐ जगवालों क्यों डरते हो, इस दर पै शीश झुकाने को,
ऐ नादानों यह वह दर है, जहाँ शीश चढ़ाये जाते हैं।
इल्जाम लगानेवालों ने, इल्जाम लगाये लाख मगर,
तेरी सौगात समझ करके, हम सिर पै चढ़ाये जाते हैं।
ऐ जगवालों जिन प्यारों पर, है खास इनायत सद्‌गुरु की।
उनको ही संदेशा आता है, और वे ही बुलाये जाते हैं।।
इस दुनिया से मैं क्या माँगू, दुनिया तो एक भिखारन है,
मैं माँगू अपने स्वामी से, जो जगतपिता कहलाते हैं।

* * * *

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।।

(मानस, 7/126/1-2)

संसार में वह सबकुछ जाननेवाला है, वही गुनी है, वही ज्ञाता है, वही पंडित है, वही दानदाता है – उसके पास देने लायक सामग्री है, कौन? **'राम चरन जाकर मन राता।'** राम, एक परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना।।

(मानस, 7/126/3)

वही नीति में निपुण है, परम सयाना है अर्थात् समाज का सबसे सुलझा हुआ पुरुष है, वेदों का सिद्धान्त उसने भली प्रकार जान लिया है (भले ही वह अँगूठा छाप हो, चाहे उसने विद्यालय का मुख कभी न देखा हो तब भी वेदों का सिद्धान्त उसने भली प्रकार जान लिया है।) कौन? **'राम चरन जाकर मन राता।'** राम, एक परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त हो गया है।

कोई जन्मपर्यन्त वेद पढ़े, निर्णय तो एक ही मिलेगा कि राम को भजो। तो आज ही से यदि भजते हैं तो काम चल गया आपका। बाल्मीकि कहाँ से गीता पढ़कर आये थे? केवल 'मरा-मरा' कहने से और एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करने से उनका काम चल गया। मानस के निर्माता भगवान शिव ने बताया कि धार्मिक कौन है?–

सोइ कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।

श्री रघुबीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत।। *(मानस, 7/127)*

उत्तरकाण्ड मानस में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर है, समाधान है। मानस के रचयिता भगवान शिव हैं तथा लोमश, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, बाल्मीकि, तुलसी इत्यादि मानस के अनुवादक हैं। मानस के निर्माता भगवान शिव कहते हैं कि हे पार्वती! वह सारा कुल कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम में, उन प्रभु के चरणों में अनुराग पैदा हो गया। बस इतना ही सम्पूर्ण धर्म है, इतना ही सबकुछ है। एक परमात्मा को धारण करना ही धर्म है।

रामचन्द्र के भजन बिनु जो पद चह निर्बान।

ग्यानवन्त अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।। *(मानस, 7/78 क)*

राम, एक परमात्मा के भजन के बिना यदि कोई निर्वाण चाहता है, परम कल्याण चाहता है तो वह बिना सींग-पूँछ का पशु है। उसमें और बैल में कोई अन्तर नहीं है। उसे पूँछ नहीं है, सींग नहीं है लेकिन है पक्का बैल। भला महापुरुष इससे अधिक कौन-सी ताड़ना दें! लोग कहते हैं कि हिन्दू वह

है जो तैंतीस करोड़ देवी-देवता माने और एक ईश्वर को माननेवाला मुसलमान! मध्यकाल में शिक्षा पर प्रतिबन्ध लग जाने से इन भ्रान्तियों ने भारतवासियों का पीछा किया है, जबकि प्राचीन सभी महापुरुषों का एक मत रहा है कि–

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

(मानस, 7/121/12-13)

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिक ऋषि, सप्तर्षि, देवर्षि नारद, व्यास और शुकदेव अनादिकाल से जितने महापुरुष होते आये हैं, सबका सिद्धान्त केवल एक है कि '**करिअ राम पद पंकज नेहा**'। सब एक ईश्वर का भजन बता रहे हैं किन्तु हिन्दू-धर्म के व्यवस्थापक कहते हैं कि एक ईश्वर कहीं लिखा ही नहीं है, एक ईश्वरवाला तो मुसलमान हो जायेगा।

रामचरितमानस में देवताओं का कहीं कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है। राम–रावण युद्ध चल रहा था। देवता दूर से दृश्य देख रहे थे। रावण अभी जीवित था इसलिए वे 'राम की जय' कहने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। वे आये थे भगवान को श्रद्धा-सुमन चढ़ाने, इसलिए '**बिकल बोलहिं जय जये।**' ***(मानस, 6/101/10 छन्द)*** 'जय हो, जय हो' बोल रहे थे। रावण ने कहा कि नमक हमारा खाते हो लेकिन तुम्हारी भाव-भंगिमा से प्रतीत हो रहा है कि तुम जय राम की चाहते हो। ठहरो, पहले तुम सबको ही देख लेता हूँ। रावण झपटा तो देवता भागने लगे। आकाश में छिटक गये। रामजी ने बाण मारा, रावण को आकाश से उतारा। युद्ध हुआ, रावण मारा गया, तब देवता समीप आकर स्तुति करने लगे–

कृत कृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

(मानस, 6/110 छन्द)

भगवन्! ये वानर सौभाग्यशाली हैं जो आपकी सेवा में काम आये। हम देवताओं को धिक्कार है कि आपकी भक्ति के बिना आवागमन में भूले पड़े हैं। विचार करें कोई जंगल में भटक गया हो, उससे कह दें कि रास्ता

दिखा दे। वह स्वयं रास्ता क्यों नहीं पकड़ लेता? कोई डूब रहा हो, उससे कोई कहता है कि बचा लो, तो क्या वह बचायेगा? बचाने लायक होता तो स्वयं न बच जाता।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथरत प्रभु भगति बिसारी।।

(मानस, 6/109/11)

'जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो।' *(मानस, 7/109/8)*- जब देवताओं के पास दुःख विद्यमान है तो आपको सुखी कहाँ से कर देंगे। आपके किसी भी शास्त्र में – भागवत, गीता, रामायण, उपनिषद् इत्यादि में कहीं भी दो भगवान की चर्चा आयी ही नहीं। हर जगह है 'ईश्वर एक'। देवता आपके हृदय की दैवी वृत्ति है। ज्यों-ज्यों दैवी सम्पद् के गुणों का उत्कर्ष होगा, परमदेव परमात्मा का देवत्व आपमें उतरता जायेगा, अर्जित होता चला जायेगा। परमदेव परमात्मा के सम्मुख दैवी सम्पद् भी अपना परिणाम देकर शान्त हो जाती है, इसीलिए भजन एक परमात्मा का! क्योंकि–

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल।।

(मानस, 7/122 क)

पानी मथने से घी निकल आये, बालू पेरने से तेल निकल आये– यह असम्भव कदाचित् सम्भव हो जायें, किन्तु **'बिन हरि भजन न भव तरिअ'**– एकमात्र हरि का भजन किये बिना कोई भव का पार पाता ही नहीं। फिर भी लोग देवताओं के पुजारी हैं। आरम्भ में हम भी तैंतीस करोड़ देवताओंवाले भगवान के विराट् स्वरूप की पूजा किया करते थे, किन्तु गुरु महाराज की शरण में आने पर बोध हुआ कि हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष ही देवपूजा है।

भगवान राम ने कागभुसुण्डि को संतोष देते हुए कहा–

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भांति अयाना।।

(मानस, 7/86/1-5)

एक पिता के कई लड़के अलग-अलग शील-स्वभाव, गुणधर्मवाले होते हैं। कोई पंडित, कोई तपस्वी, कोई धनवंत, कोई शूरवीर, कोई ग्याता तो कोई दानदाता किन्तु कोई ऐसा भी पुत्र है जो मन-क्रम-वचन से पिता का भक्त है। वह सपने में भी दूसरा धर्म नहीं जानता। ऐसा पुत्र पिता को प्राणों के समान प्यारा हो जाता है, यद्यपि वह उक्त सभी गुणों से हीन है।

एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।।
अखिल बिस्ब यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया।।

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।

(मानस, 7/87 क)

इसी प्रकार जगत् के जितने भी जीव हैं– पशु-पक्षी, देवता, नर, असुर इत्यादि, यह सम्पूर्ण विश्व मेरा जन्माया हुआ है, सब पर मेरी बराबर दया है। इनमें भी जो मद-माया का त्याग करके मुझे भजता है, वह पुरुष हो, नपुंसक हो, नारी अथवा नर हो, चराचर जगत् में कहीं भी जन्म लिया हो, उत्तरी ध्रुव में जन्मा हो या यूरोप में या भारत में; जो सम्पूर्ण भावों से मुझे भजता है वह मुझे परमप्रिय है। जो मेरा भजन नहीं करता, वह विधाता ही क्यों न हो, मुझे उतना ही प्रिय है जितना समस्त जीव! इसलिए भजन एक परमात्मा का करना चाहिए। ये मंदिर, तमाम तीर्थ सभी उचित हैं, भजन की जगह हैं, परमार्थ की पाठशालायें हैं।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजय दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिवेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।

(मानस, 7/125/4-7)

सारे तीर्थों का भ्रमण, साधनों का समुदाय, जोग, वैराग्य और ज्ञान में दक्षता, प्राणियों पर दया, परोपकार इत्यादि जितने साधन वेद ने कहे हैं (ये सभी साधन वेदवर्णित हैं, गलत नहीं हैं), ये जितने भी साधन हैं सबका फल एक हरि की भक्ति है।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

(मानस, 7/48/2)

ज्ञान, दया, इन्द्रियों का दमन, मन का शमन, समस्त तीर्थाटन– ये सब धर्म हैं, श्रुतियों और संतजनों ने इन्हें धर्म कहा है, लेकिन '**सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥**' *(मानस, 7/119/18)*– इन सबका फल है हरि की भक्ति, जो बिना संत के आज तक किसी ने पाया ही नहीं।

लक्ष्मण ने भगवान राम से पूछा– प्रभो! सुख का स्रोत क्या है? भगवान ने बताया– '**भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥**' *(मानस, 3/15/4)*– अनुपम सुख की मूल भक्ति है। लक्ष्मण ने कहा– प्रभो! वही प्रदान कर दें। भगवान ने कहा कि उसे तो मैं भी नहीं दे सकता। वह तो तभी मिलती है जब संत अनुकूल हों। परमात्मा परम धाम है, लेकिन उन परमात्मा की जागृति संतों से है।

संसार भर के विद्यालयों में, शिशु कक्षा की पुस्तकों में तमाम चित्रकथायें हुआ करती हैं। जिस देश की जैसी संस्कृति है, वैसे ही चित्र पढ़ाये जाते हैं। कहीं 'क माने कबूतर' तो कहीं 'ए माने एप्पल'! बच्चा प्राथमिक कक्षाओं में गया तो कहते हैं– भेड़िया आया, मुन्नी ने स्टिक उठाया, भेड़िये ने दुम दबाया और भाग गया। शौर्य जगाने के लिए या विभिन्न जानकारियों के लिए बाल-पुस्तकों में चित्रों का अम्बार लगा रहता है, किन्तु वही बच्चे जब स्नातक, परास्नातक, शोध की कक्षाओं में पहुँचते हैं तब वे सोच भी नहीं सकते कि 'ए' का मतलब 'एप्पल' होता है अथवा 'क' माने कबूतर होता है। अबोध बच्चों को अक्षर-ज्ञान कराने के लिए चित्र सर्वोपरि हैं। यह शिक्षकों

की सूझ है, बच्चों की साधना है। इसी तरह ये प्रार्थना-स्थल मंदिर इत्यादि जन-साधारण के लिए चित्रकथा ही हैं।

यह जीव अबोध जन्मता है। यदि सत्संग नहीं मिला तो 90 वर्ष का वृद्ध भी अबोध ही है। आयु के दिन पूरे कर लेने से कोई वृद्ध नहीं हो जाता। आदि शंकराचार्य 18 वर्ष की आयु में 75 वर्ष के मंडन मिश्र के समक्ष शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हुए तो मिश्रजी डाँटकर बोले– 'कुतो मुण्डी?' अर्थात् अभी कल के बच्चे, तुमने मूड़ कैसे मुड़ा लिया? अभी संन्यास कैसे ले लिया? संन्यास तो बुजुर्गों के लिए होता है। शंकराचार्य जी ने कहा– भगवन्! वस्तुतः जो ज्ञान-वृद्ध हैं, वही वृद्ध कहलाते हैं। ईश्वर के साक्षात् के साथ मिलनेवाली जानकारी का नाम ज्ञान है। केवल आयु के दिन पूरा कर लेने से कोई वृद्ध नहीं होता। शरीर तो एक वस्त्र है। इस वस्त्र की आयु पूरी हुई है, बाल सफेद हुए हैं। यदि ज्ञान का स्रोत नहीं मिला तो अभी आप बालक हैं, मैं वृद्ध हूँ। अस्तु, इन मंदिरों में ज्ञान के स्रोत की जागृति के लिए चित्रकथाएँ होती हैं। जितने भी मंदिर हैं, जिनमें पूर्व महापुरुषों की प्रतिमाएँ हैं, ये नाम-घर हैं, प्रार्थना-घर हैं, पूजा-स्थलियों के नाम हैं, आध्यात्मिक शिक्षा के संस्थान हैं। सब मिलाकर ये गुरुओं की शिक्षा के द्वार हैं, गुरुद्वारे हैं।

विक्रमादित्य के समय से मंदिरों का उल्लेख मिलता है। पहले मंदिर की छतें सपाट हुआ करती थीं, समतल हुआ करती थीं। कुछ दिनों में भक्तों के हृदय में श्रद्धा जगी कि छत पर घूमने से भगवान के सिर के ऊपर चरण पड़ते हैं इसलिए इन पर गुम्बद बना दें। ठीक है, इससे भक्तों के पाँव तो नहीं पड़ेंगे किन्तु मिस्त्री तो जाता है मरम्मत करने, सफाई-कुटाई करने; उसका पाँव तो अवश्य पड़ता होगा। **'प्रभु तरु तर कपि डार पर, तेहि किये आप समान।'** मानस में है कि भगवान राम वृक्ष के नीचे, छाया में विराजमान थे और सभी बंदर ऊपर पेड़ की डालों पर थे इसलिए मंदिर पर चढ़ जाना कोई अपराध नहीं है। भगवान कहाँ नहीं हैं! **'देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।'** *(मानस, 1/184/6)* इसलिए विश्व में जहाँ जैसी स्थापत्य कलायें थीं, वैसे ही मंदिर बन गये। किसी का नाम चर्च,

किसी का मंदिर, किसी का मस्जिद, किसी का नाम गुरुद्वारा, कहीं नाम-घर..... और सब मिलाकर ये परमात्मा की पाठशालायें हैं। किसी न किसी स्तर तक ये सभी पढ़ाते हैं। भगवान से सम्बन्ध जोड़ने के लिए, अचेत सोई हुई आत्माओं को जगाने के लिए पूर्वजों ने यह व्यवस्था दी है, उचित है। लोग कहते हैं कि हिन्दू मूर्तिपूजक है। मुसलमान क्या हैं? ताजिया लेकर चलना.....वह भगवान है क्या? किसी मजार पर चादर चढ़ाना, मजार पर सिर पटकते रहना – यह क्या है? सृष्टि में ऐसा कोई संस्थान नहीं है जहाँ मूर्तिपूजा न हो।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

क्षिति माने पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि! कोई अग्नि को प्रणाम कर रहा है, कोई आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रणाम कर रहा है – यह मूर्तिपूजा ही है। पुस्तक हो, दीवाल हो, कुछ भी हो, सब मूर्तिपूजा है। भगवान तो वहाँ हैं नहीं। अचेत सोई हुई आत्माओं को जगाने के लिए, प्रभु से श्रद्धा जोड़ने के लिए पूर्वजों ने यह व्यवस्था दी है। भगवान श्रीकृष्ण ने इस व्यवस्था को कई तरह से प्रोत्साहन दिया, जैसे– बचपन में वह ठुमक कर नाचने लगे, लोग 'गोविन्दा-गोविन्दा' गाने लगे। वह आठ वर्ष के हुए तो रासलीला करने लगे। माता पार्वती रासलीला देखने चलीं तो भोलेनाथ ने कहा कि मैं भी चलना चाहता हूँ। पार्वती ने कहा– नहीं प्रभो! वहाँ केवल स्त्रियाँ ही जा सकती हैं। भोलेनाथ ने कहा– यह कौन-सी बड़ी बात है! एक साड़ी ले आ। उन्होंने उसे ओढ़ लिया। सब सखियाँ तो मुँह खोलकर बैठी थीं लेकिन भोलेनाथ के साथ समस्या थी कि मुँह खोलें तो ऊपर चन्द्रमा है, गंगा की धारा है, सर्प भी लहरा रहा है, जटाजूट है। पोल खुल जाती। भगवान कृष्ण ने कहा कि घूँघट में यह कौन-सी सखी आ गयी है! उन्होंने उछलकर घूँघट हटा दिया, देखा तो भोलेनाथ। कृष्ण भगवान ने सादर चरण स्पर्श किया, कहा– प्रभो! आपने भी कृपा कर दी? शंकरजी बोले– कन्हैया! कैलाश में हमारा मन नहीं लग रहा था तो चले आये। भगवान तो आपके भीतर प्रसुप्त हैं, रहस्यमय हैं। उस रहस्य को उद्घाटित करना, प्रभु के प्रति श्रद्धा जागृत करना यही रासलीला है।

'जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।।' *(मानस, 2/92/4)*– इस जीवात्मा को जगा हुआ तब समझना चाहिये जब सारे विषयों से वैराग्य हो जाय और प्रभु से श्रद्धा जुड़ जाय। इसके लिए आपको कुछ छोड़ना नहीं है। तिनका भी उठाते हैं तो अनुरागपूरित हृदय से उठायें, श्रद्धा के साथ नाम का स्मरण करें, आप सही दिशा में हैं। यह आरम्भिक कक्षायें हैं लेकिन भजन का स्तर जब उठ जाता है, भजन जब हृदय से जागृत हो जाता है उस समय की साधना केवल गीता है। गीता ही आदि धर्मशास्त्र है। सृष्टि बाद में उत्पन्न हुई, मनुष्य नाम बाद में आया, गीता पहले ही प्रसारित हो गयी थी। भगवान कहते हैं– अर्जुन! इस अविनाशी योग को आदि में मैंने सूर्य से कहा। सूर्य ने इसे ही अपने पुत्र महाराज मनु से कहा। मनु से जायमान होनेवाले ही मनुष्य कहलाते हैं। वहीं से मनुष्यों का उद्गम है। मनु आदिपुरुष हैं इसलिए आप आदमी कहलाते हैं। मनु महाराज ने जो उपदेश पिता से सुना, उसे स्मृति में धारण कर लिया और स्मृति की परम्परा देते हुए इक्ष्वाकु से कहा। उनसे राजर्षियों ने जाना। इस महत्वपूर्ण काल से यह अविनाशी योग इसी पृथ्वी में लुप्त हो गया था। योग अविनाशी है, इसका विनाश तो कभी होगा नहीं, किन्तु मनुष्य उसे भूल अवश्य गया था। वही पुरातन योग अर्जुन मैं तेरे प्रति कहने जा रहा हूँ, क्योंकि तू मेरा प्रिय भक्त है, अनन्य सखा है। इस प्रकार विशुद्ध मनुस्मृति गीता है। यह परमात्मा के श्रीमुख की वाणी है, उनके मुख से सीधा प्रसारण है। भगवान की वाणी ही शास्त्र कहलाता है इसीलिए इतने वर्ष बीत गये फिर भी गीता के श्लोकों में सींक बराबर भी कोई अन्तर नहीं आया है और यह आज भी सुरक्षित चली आ रही है। गीता संस्कृत में है। आरम्भ में बच्चे-बच्चे भी संस्कृत ही बोला करते थे लेकिन मध्यकाल में संस्कृत पर कड़े प्रतिबन्ध लग गये। आज अधिकांश लोग संस्कृत नहीं समझते। उनको गीता के आशय से परिचित कराने के लिए 'यथार्थ गीता' प्रकाश में आ गयी है। यह भी भगवान की प्रेरणा से लिखी गयी है। यह आपलोगों का आदिशास्त्र, पूर्वजों का सम्मानित शास्त्र और आज के विश्व का सम्पूर्ण शास्त्र है। इस धर्मशास्त्र को आप लें।

चार-छः बार केवल इसका अर्थ पढ़ लेंगे तो धर्म को लेकर आपको न कोई संदेह है, न भविष्य में रहेगा।

गीता में भगवान ने कहा– अर्जुन! जानते हो ईश्वर कहाँ रहता है? **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'**– सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर का निवास है। ईश्वर हृदय में है तो हम पूजा करने कहाँ जायें? **'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'**– अर्जुन! उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ। उसकी कृपा से तुम परम शान्ति प्राप्त कर लोगे, उस स्थान को पा जाओगे जो अमर है, शाश्वत है। तुम रहोगे, तुम्हारा घर रहेगा और तुम्हारा जीवन रहेगा। यह गीता की देन है इसलिए आरम्भ में श्रद्धा के केन्द्र मंदिर, मस्जिद भले ही हों, जब हृदयस्थ ईश्वर की जागृति आयेगी तो आपको हृदय में ही पूजा करनी होगी और उसकी विधि है गीता।

संत कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उनमें योग-साधना जागृत थी। उन्होंने वही निर्णय दिया जो गीता दे रही है–

कबीर दुनिया देहरे, शीश नवावन जाय।
हिरदय में हरि जी बसें, तू ताही लौ लाय॥

यह दुनिया दीवारों में शीश झुकाने जाती है। तुम्हारे प्रभु हृदय में विराजमान हैं, उन्हीं में लौ लगाओ। श्रीकृष्ण कहते हैं– हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ। कबीर ने नया क्या कह दिया! कबीर ने वही कहा जो पहले से गीता में है, जबकि कबीर अनपढ़ थे। महापुरुषों को भगवान पढ़ाते हैं। भजन एक परमात्मा का। अगर परमात्मा परम धाम है तो सद्गुरु ही उसके प्रवेश-द्वार हैं। सद्गुरु ही भजन की जागृति, पूर्तिपर्यन्त पथ हैं; क्योंकि योग-साधना वाणी से कहने पर भी नहीं आती, लिखने में भी नहीं आती। यह किसी अनुभवी सद्गुरु के द्वारा किसी अनुरागी साधक के हृदय में जागृत हो जाया करती है।

संसार में तरह-तरह के दरबार लगे हुए हैं। एक से एक राजा, महाराजा, सुल्तान, बादशाह – सबके दरबार ही तो थे। विश्वविजयी सिकन्दर का दरबार, महान सम्राट अशोक का दरबार, अलाउद्दीन खिलजी का दरबार, महाराणा

प्रताप, महाराजा दशरथ इत्यादि का दरबार.......लेकिन सर्वोपरि दरबार सद्गुरु का होता है।

दरबार बहुत देखे हमने तेरे दर सा दरबार नहीं।
जब शीश झुका गुरु चरनन में तब जन के सिर कोई भार नहीं।।

संसार में बहुत से दरबार देखे, तरह-तरह की साज-सज्जावाले; किन्तु सद्गुरु-जैसा दरबार सृष्टि में नहीं है। राजा-महाराजा सबको इस दरबार में आना ही पड़ता है। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ नंगे पाँव वशिष्ठजी के दरबार में गये। शृंगी ऋषि के आशीर्वाद से उनकी मनोकामना की पूर्ति हुई। इसलिए दूसरे दरबारों से इनकी कोई तुलना नहीं है। जब सद्गुरु के चरणों में शीश झुक गया तब साधक के सिर पर कोई भार ही नहीं रह जाता। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। *(गीता, 9/22)*

अर्जुन! अनन्य माने अन्य न, मुझे छोड़कर अन्य किसी देवी-देवता को न भजते हुए केवल मुझे समर्पण के साथ भजता है, उस भक्त के योगक्षेम की व्यवस्था मैं करता हूँ अर्थात् योग सिखाना, प्रकृति के अनन्त खोह-खंदकों से निर्विघ्न निकाल ले जाना, दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति दिलाना– यह सारा भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। यही इस पद में है कि जब गुरु के चरणों में शीश झुका तो सेवक की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है। उसका कर्त्तव्य केवल इतना रह जाता है कि आदेश को समझे और चलता जाय। उस दरबार में पहुँचता कौन है? दुनिया के सताये लोग ही वहाँ पहुँचते हैं–

दरबार में सच्चे सतगुरु के दुःख-दर्द मिटाये जाते हैं।
दुनिया के सताये लोग यहाँ सीने से लगाये जाते हैं।।

सच्चे सद्गुरु के दरबार में दुःख-दर्द मिटाये जाते हैं। बारहमासी में है–

ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति गुरु के लच्छन जान।
इच्छा राखे मोक्ष की ताहि शिष्य पहिचान।।

गुरु ब्रह्म से संयुक्त हो, ब्रह्मस्वरूप हो, वह ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकता हो और जिस साधक में भजन जागृत हो जाय, उसकी सुरति को पकड़कर भजन में लगा सके– यह सद्गुरु के लक्षण हैं। जिसे केवल मोक्ष की इच्छा हो, यह शिष्य की पहचान है। गुरु एक स्थिति है। **'नास्ति तत्त्वः गुरोः परम्।'**– जो अविनाशी तत्त्व है, वह परम तत्त्व परमात्मा ही सद्गुरु है। गुरु एक स्थिति-विशेष है। उनके पास पहुँचते कौन हैं? इस पर कहते हैं–

दुनिया के सताये लोग यहाँ सीने से लगाये जाते हैं।

ऐसे लोग जिनका कोई ठिकाना न हो, सब जगह से ठुकराये गये हों, ऐसे निष्कासितों को सद्गुरु अपना लेते हैं। भाग्य में कुसंस्कार होंगे तो वह भी कट जायेंगे। सद्गुरु की कृपा से सुसंस्कारों का सृजन हो जायेगा। संत सहजोबाई कहती हैं–

हरि की कृपा होय तो, नहीं होय तो होय।
सहजो गुरु की कृपा बिन, भव पार न पावै कोय।।

दुनिया के सताये हुए यहाँ अपनाये जाते हैं; जैसे– लहर तालाब पर फेंके गये कबीर सद्गुरु की शरण पा गये। शृंगी ऋषि मृगों के झुण्ड में पाये गये, विभाण्डक ऋषि ने उन्हें उठा लिया। रामजी के अवतार का कारण शृंगी ऋषि बने। शकुन्तला जंगल में फेंकी हुई कन्या के रूप में एक ऋषि को मिली, ऋषि के आश्रम में उसका पालन-पोषण हुआ, वह भारत की महारानी हुई। भरत उन्हीं का लड़का था जिसके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। तुलसीदासजी का जन्म हुआ तो माँ मर गयी। ज्योतिषाचार्यों ने घोषित किया कि यह अनिष्टकारी है– बाप मर जायेगा, इसका पालन-पोषण करनेवाले मर जायेंगे अतः इसे जंगल में फेंक दो। उन्हें जंगल में फेंक दिया गया। चुनिया नाम की एक गरीब महिला ने उनका पालन किया। इसी बीच तुलसीदास जी के पिता मर गये। कुछ काल बाद चुनिया भी मर गयी। लोग कहते कि जो दूध पिलाता है, यह उसी को काट खाता है। यह लड़का नहीं तक्षक है। वह भिक्षा माँगने जाते तो लोग दरवाजा बंद कर लेते। एक मंदिर के पुजारी ने भी दरवाजा बंद कर लिया। नरहर्यानंद नामक एक महापुरुष उधर से निकले।

उन्होंने पूछा– यह बालक रोता क्यों है? लोगों ने बताया– यह अभागा है महाराज! यह दूबेजी का लड़का है। अब इसके आगे-पीछे कोई नहीं है। जो भी इसे दाना-पानी देता है, मर जाया करता है। नरहर्यानंदजी ने उनका पालन-पोषण किया, काशी में शिक्षा की व्यवस्था दी। वही अभागा बालक तुलसीदास के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार दुनिया के सताये हुए लोग संतों के यहाँ सीने से लगाये जाते हैं।

भजन एक नशा है। इसमें बड़ी मस्ती है–

यह महफिल है मस्तानों की हर शख्स यहाँ है मतवाला।
भर-भर के जाम इबादत के यहाँ सबको पिलाये जाते हैं॥

भजन का अपना एक अपूर्व आनंद है– **'पीवत नाम रस प्याला, मन मोर भयो मतवाला।'** भजन में मीरा की लौ लग गयी, तो **'लोग कहें मीरा भई बावरी, सास कहे कुलनाशी रे।'** मीरा बावरी नहीं थीं। उन्हें तो भजन की मस्ती का नशा था।

सभी नशे संसार के उतर जात परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

यह नशा प्राप्तिपर्यन्त उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। साधारण नाम ध्यान में, ध्यान समाधि में बदल जायेगा और आनंद उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। इस प्रकार संतों का यह दरबार भजन के मस्तानों की महफिल है। इस महफिल में 'भर-भर के जाम इबादत के यहाँ सबको पिलाये जाते हैं'– इबादत अर्थात् सम्पूर्ण योग-साधना, जाम अर्थात् प्याला। भजन की जागृति का प्याला यहाँ सबको भरपूर पिलाया जाता है। महापुरुष के द्वारा ही यह जागृति होती है। भजन लिखने में नहीं आता, कहने में नहीं आता। केवल आरम्भिक स्तर का पाठ्यक्रम लिखने में आता है। शुद्ध योग-साधना, भजन किसी अनुभवी महापुरुष के द्वारा किसी-किसी अनुरागी के हृदय में जागृत हो जाया करता है। सद्गुरु के माध्यम से आपके अंदर जो सुषुप्त आत्मा है वह जागृत हो जायेगी। जिस परमात्मा की हमें चाह है, जिस सतह पर हम बैठे

हैं, उनसे श्रद्धा से सम्बन्ध जुड़ा; क्योंकि महापुरुष में वह परमात्मा जागृत हैं इसलिए वह परमात्मा आपकी आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाते हैं, मार्गदर्शन करने लग जाते हैं। इसका नाम है भजन की जागृति। गुरु महाराज वाणी से तभी तक उपदेश करते हैं जब तक हृदय से उपदेश करना शुरू न कर दें। जब वह हृदय से उपदेश करने लगते हैं तो 80% हृदय से और 10–20% वाणी से करते हैं। सद्गुरु रथी हैं, आत्मा जागृत है, भगवान प्रेरक हैं – ये सब पर्यायवाची हैं। सम्पूर्ण योग-साधना की जागृति, क्रमशः उन्नति करते हुए लक्ष्य तक की दूरी तय करने में संरक्षण प्रदान करना सद्गुरु के क्षेत्र की वस्तु है। यही इबादत का जाम है जो सबको पिलाया जाता है। चाहे कोई ऊँची जाति में जन्मा हो, सवर्ण या अवर्ण हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह इस्लाम का अनुयायी हो, ईसाई या यहूदी हो, इससे भी अंतर नहीं पड़ता। सद्गुरु की दृष्टि में सम्प्रदाय, मजहब कुछ भी महत्व नहीं रखते। ये सम्प्रदाय तो गुरु-घराने हैं। जहाँ साधना जागृत हुई तो सब सिमट जाते हैं। एक इकाई, एक साधना, एक रक्षक, एक प्रेरक और परिणाम में दर्शन और स्थिति एक-जैसी। यह सम्पूर्ण साधना आपको गीता में मिलेगी। सांसारिक दृष्टिवाले इस दरबार में आने से हिचकते हैं–

ऐ जगवालों क्यों डरते हो इस दर पै शीश झुकाने को।
ऐ नादानों यह वह दर हैं जहाँ शीश चढ़ाये जाते हैं॥

घर-गृहस्थी में उलझे हुए लोग सद्गुरु के दरबार में जाने से डरते हैं कि घर-गृहस्थी की व्यवस्था के लिए समय नहीं मिलेगा; किन्तु यदि इस दरबार में जाने से आप डरते हैं तो वास्तव में अभी अबोध बालक हैं। आयु चाहे जितनी हो जाय, जब समझ नहीं है तो अबोध ही हैं, इसलिए इन पंक्तियों में है कि इस दरबार में आने से हिचकना नहीं चाहिए। यह वह दरबार है जहाँ शीश भेंट किया जाता है, चढ़ाया जाता है। किसी ने शीश काटकर रख ही दिया तो कौन सीखेगा सद्गुरुओं की विद्या? शीश चढ़ाने का तात्पर्य है कि अपने सिर के विचारों का, मन का सर्वांगीण समर्पण; जिसका आशय है कि आप अपनी बुद्धि से सोचना बन्द करें। गुरु महाराज क्या कहते हैं, उसे समझें

और चलते जावें। शीश का यह समर्पण जब तक आपमें सद्गुरु के प्रति प्रेम नहीं है, श्रद्धा नहीं है, तब तक नहीं होगा।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश उतारे चरण धरे, सो पैठे घर माहिं।।

× × ×

प्रेम बिकन्ता मैं सुना, जो सिर सांटे लेइ।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेइ।।

प्रेम को बिकता हुआ हमने सुना, यदि कोई सिर के मोल ले कि सिर दो और प्रेम लो। लोभी व्यक्ति शीश नहीं दे पाता। वह प्रेम का केवल रट लगाता है। वह वास्तव में प्रेम को नहीं जानता। कुछ न कुछ कामना है तो प्रेम कहाँ!

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय।।

प्रेम किसी बगीचे में पैदा नहीं होता, बाजार में नहीं बिकता। आप चाहे राजा हों चाहे प्रजा, शीश दें और प्रेम लें। जहाँ सद्गुरु का स्वरूप दो मिनट के लिए भी आप अपने ध्यान में पकड़ ले जायेंगे तो आपकी आत्मा में भजन जागृत हो जायेगा। वैसे–

इल्जाम लगानेवालों ने इल्जाम लगाये लाख मगर।
तेरी सौगात समझकर के हम सिर पर चढ़ाये जाते हैं।।

कोई भजन करने लगता है तो लांछन लगानेवालों की कतार लग जाती है। मीरा जब भजन करने लगीं तो सब पीछे पड़ गये। सास ने कहा– यह कुल में कलंक पैदा हो गयी। आज उस कुलरक्षिका सास को कोई नहीं जानता, मीरा को संसार जानता है।

इसी प्रकार का कथानक कबीर का है। जब उनकी साधना की महिमा फैलने लगी तब काशीनरेश ने कहा कि मैं भी उनका सत्संग सुनूँगा। दरबारी विद्वान बिगड़ खड़े हुए– सत्संग ही सुनना है तो उन महामहोपाध्याय का सुनिये, जिन आचार्य की महिमा दिग्-दिगान्तर तक फैली है उनसे सुनिये। वह तो

जुलाहा है। लावारिश पड़ा मिला था, संस्कारविहीन है। राजा ने कहा- कुछ भी हो, मैंने उनका बहुत नाम सुना है, मैं तो अवश्य सुनूँगा।

दरबारियों ने सोचा कि राजा साहब नहीं मानेंगे, तब उन्होंने एक षड्यंत्र रचा। एक नर्तकी को पैसे देकर उसे सिखाया कि जब कबीर बाजार में आवें तो उनका चरण पकड़कर ऐसा-ऐसा बोलना। उसने वैसा ही किया। लगी विलाप करने कि मैं चार दिन से भूखी मर रही हूँ, हमारा पुराना धन्धा ही ठीक था। आपने हमको रक्खा क्यों? रक्खा है तो हमारे खाने-पीने की व्यवस्था क्यों नहीं करते? तब तक जिन लोगों ने उसे सिखाया-पढ़ाया था, सड़क पर आ गये और कहने लगे- देवीजी! क्या बात है? उसने कहा कि इन्होंने हमें रक्खा क्यों? हमारा धन्धा छुड़ाया क्यों? अब हमें खाने को क्यों नहीं देते? लोगों ने कहा- देखो इस भांड़ को, इसके तपस्या की पोल खुल गयी। है तो जुलाहा, धर्म क्या जानेगा!

कबीर ने देखा कि मामला कुछ आगे बढ़ा हुआ लगता है। अतः उन्होंने कहा- आप भूखी क्यों मर रही हैं? कुटिया में अन्न-जल है। आप चलें। वह नृत्यांगना कबीर के पीछे-पीछे चल पड़ी। शरारती भी साथ-साथ चल पड़े। कुटिया करीब आ गयी तो वे रुक गये और कहा कि इस कुपात्री के जमीन में पाँव मत रखो अन्यथा हमलोगों को भी पाप लग जायेगा, फिर से नहाना पड़ेगा। वे वहीं से लौट गये।

कबीर ने उस महिला से कहा- माताजी! एक महीने से मैं भगवान से प्रार्थना कर रहा था कि प्रभु, ऐसी कृपा करें कि आप रहें, हम रहें और कोई भी हमारे पास न आये। यहाँ आनेवालों में से कोई कहता है कि लड़का नहीं है, कोई कहता है कि परीक्षा दी है, कोई कहता है कि बिटिया का ब्याह है, कोई पद का अर्थ समझना चाहता है, तो कोई भजन..... दिनभर भीड़-भाड़! इसलिए ऐसी कृपा कर दें कि हमारे पास कोई न आये। लगता है भगवान ने सुनवाई कर ली, कृपा करके आपको भेज दिया। अब आप इस कुटिया में जीवनपर्यन्त रहें। वह महिला समझ गयी कि यह अच्छे महापुरुष हैं।

चौथे दिन राजा साहब के यहाँ सत्संग सुनाने जाना था। कबीर जानते थे कि यह इसीलिए तो आयी है, अतः बोले– चलिये माई, वहाँ पर सत्संग है। वह भी पीछे-पीछे चल पड़ी। दरबारियों ने पता लगाया कि वह साथ में आ रही है तो राजा से कहा कि कबीर बड़ा निर्लज्ज भी है। उसका कोई भरोसा नहीं। आजकल वह एक नर्तकी के साथ रहता है, कहीं उसे लेकर आपके दरबार में न आ जाय। इतने में कबीर दिखाई पड़े। वह नर्तकी भी पीछे-पीछे आ रही थी। राजा साहब के यहाँ भी उसने एक-दो बार नृत्य किया था। वह उसे पहचान गये। बोले– मंत्रीप्रवर! बहुत हो गया, इन्हें विदा करें। किसी नर्तकी का साथ कर लिया तो क्या हो गया, किन्तु हमारे पास आते समय तो मर्यादा से आना चाहिये था। कबीर बड़ी शान्ति से वापस घूम गये।

उस नर्तकी के लिए यह सब असहनीय था। उसने दरबारियों का दिया हुआ पैसा फेंक दिया और बोली– यह महापुरुष हैं। चार दिन से हमने इनकी विधिवत् परीक्षा ली। यह पैसा आपके दरबारियों ने ही हमें दिया था कि तुम कबीर के सम्बन्ध में ऐसा कहना। यह सुनकर राजा सिंहासन से उठकर कबीर के पास आये और उनसे सत्संग सुनाने की प्रार्थना की। कबीर ने कहा– राजन्! आज इतना सत्संग काफी है। राजा को कान का कच्चा नहीं होना चाहिये। सत्संग फिर कभी होगा।

यह है इल्जाम लगाना! लेकिन भगवान् की भेंट समझकर अच्छे महात्मा उसे स्वीकार कर लेते हैं जो कालान्तर में इतिहास बन जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि–

ऐ जगवालों जिन प्यारों पर है खास इनायत सद्गुरु की।
उनको ही संदेशा आता है और वे ही बुलाये जाते हैं॥

ऐ संसार के लोगो! ध्यान से सुनो। जिन प्यारों पर सद्गुरु की विशेष कृपा रहती है, भगवान की ओर से उन्हीं को संदेशा आता है, भगवान की वाणी उन्हें ही मिलती है और वे ही बुलाये जाते हैं। कबीर कहते हैं– **'गगन मंडल में पिया गोहराइन, आवागमन की फिकर मिटी।'** वे सौभाग्यशाली

होते हैं जिन्हें भगवान ने पुकारा, आकाशवाणी दी कि तुम हमारे हो। जिन पर सद्गुरु की कृपा होती है, उनको ही संदेश आते हैं। अन्त में कहते हैं–

इस दुनिया से मैं क्या माँगू, दुनिया तो एक भिखारन है।
मैं माँगू अपने स्वामी से, जो जगतपिता कहलाते हैं॥

गुरु महाराज कहा करते थे– हो, मेरे स्वरूप से लोग क्या-क्या पा जाते हैं, यह मैं भी नहीं जानता। मैं बैठा भर हूँ, सारी आपूर्ति भगवान स्वयं करते हैं। इस दुनिया से क्या माँगा जाय, दुनिया तो स्वयं एक भिखारिन है। भगवान शिव कहते हैं–

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥
(मानस, 3/38/5)

हे पार्वती! मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि सत्य केवल हरि हैं, हरि का भजन है, जगत् तो एक स्वप्न मात्र है। कोई स्वप्न घड़ी दो घड़ी का होता है और यह 80-85 साल का है। इसके बाद तो यह जगत् भी एक स्वप्न बन जायेगा। फिर तो **'सोइ पुर पाटन सोइ गली बहुरि न देखा आइ।'** जो नश्वर है, उसमें आप पायेंगे भी क्या!

राजा रंक सभी दुनिया के, छोटे बड़े मजूर।
हरिश्चन्द्र हरि भजन बिनु, अंत धूरि का धूरि।
यारों एक दिन मौत जरूर॥

जब सिंहासन छोड़कर चले ही जाना है तो फिर यहाँ है क्या? कोई महाराजा ऐसा नहीं हुआ जिसकी इच्छाओं की पूर्ति हो गयी हो। त्रैलोक्य विजेता रावण भी अधूरे अरमानों को लेकर चला गया। इच्छा अथाह समुद्र है। एक वस्तु मिलेगी तो दूसरी अनेक इच्छाओं को खड़ा कर देगी। **'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'**– हर लाभ एक नवीन लोभ को जन्म देता है, न कि वह तृप्ति प्रदान करता है। इस संसार से तृप्त होकर आज तक कोई गया ही नहीं। इसलिए दुनिया से मैं क्या आशा करूँ? यदि माँगना है तो अपने स्वामी से माँगें जो जगत्-पिता हैं, संसार का भरण-पोषण करनेवाले हैं।

'सिकन्दर जब चला दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे।' लगभग 32 वर्ष की आयु में सिकन्दर चल बसा। वह विश्वविजय की योजना बनाते रह गया। उसकी मृत्यु के 12 वर्ष पश्चात् उसका तेरह वर्षीय राजकुमार, महारानी, माता, चाचा सब मार दिये गये क्योंकि सिकन्दर ने जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की थी उसके चार सेनापतियों ने उन्हें बाँट लिया और वे जानते थे कि यदि इस कुल का कोई भी जीवित है तो मालिक वह कहलायेगा, हम तो उसके नौकर ठहरे। इसलिए जिसमें सिकन्दर ने जन्म लिया था, उस वंश का मूलोच्छेद हो गया। क्या यही दिन देखने के लिए सिकन्दर ने विजय अभियान छेड़ा था। दुनिया में जो कुछ भी है, **'काल जो बैठा मंच पर, आज मसाने दीठ।'** परमपिता परमात्मा से माँगते ही वे आपूर्ति करने लगते हैं।

एक राजा साहब ने कहा– मेरे राज्य में भूखा-नंगा कोई न रहे। सबको अन्न-वस्त्र की व्यवस्था और छाया होनी चाहिये। मंत्रियों ने व्यवस्था दे दी। नदी के किनारे एक महात्मा पड़े हुए थे। उनके पास कुछ था ही नहीं। मंत्रियों ने कहा– महाराज, आप भी कुछ लीजिये। लेकिन उन्होंने कुछ स्वीकार ही नहीं किया। अब वे करें क्या? उन्होंने महाराज साहब से निवेदन किया कि आपके राज्य को रामराज्य तो हम नहीं कह सकते लेकिन रामराज्य के बाद यदि कोई राज्य है तो वह आपका है। यहाँ सबके घर पर छाया है, वस्त्र है, भोजन है, दूध-दही-घी की प्रचुरता है, शान्ति है; किन्तु एक व्यक्ति ऐसा है जिसके पास कुछ नहीं है फिर भी वह कुछ लेता ही नहीं। महाराजा ने कहा– यदि केवल एक मामला है तो इसे मैं देखूँगा। वह महात्मा के पास गये। सेवकों से कहा कि इनको यह जमीन दे दी जाय। महात्मा ने सिर हिला दिया। राजा ने कहा– लगता है कम है, इन्हें गाँव दे दो। उन्होंने पुनः सिर हिलाया तो महाराज ने कहा– यह भी कम प्रतीत होता है, इन्हें पाँच गाँव दे दिया जाय। महात्मा ने स्वीकार नहीं किया तो मंत्रियों ने कहा– इतना कोई नहीं पाया। मालिक स्वयं दे रहे हैं ले लो नहीं तो पछताओगे। महात्मा ने कहा– अगर वह मालिक हैं तो मैं अवश्य माँगूँगा, लेकिन जो वह देते हैं वह मैं नहीं लूँगा। जो मुझे जरूरत है, मैं वह माँगूँगा। राजा बोले– ठीक है, ठीक है, माँग लो।

महात्मा ने कहा– मुझे ऐसा मालिक चाहिये जो स्वयं न खाये, मुझे खिलाये। मैं सो जाऊँ तो वह जगकर पहरा दे। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ वह साथ-साथ चले और जिस वस्तु की जरूरत हो उसकी आपूर्ति करता रहे। राजा ने कहा– यदि मैं आपके पीछे-पीछे चलूँ तब तो राजकाज रुक जायेगा। हाँ, यह हो सकता है कि मैं जो खाऊँगा, आपको भी खिलाऊँगा। जो पहनूँगा, आपको भी पहनाऊँगा। हम सोयेंगे तो आप भी सोयेंगे। सिपाही लोग पहरा देंगे। महात्मा बोले– नहीं राजन्! हमें ऐसे ही स्वामी उपलब्ध हैं जो स्वयं नहीं खाते और हमें खिलाते हैं। मैं सो जाता हूँ तब भी वह जगकर पहरा देते रहते हैं। मैं जहाँ जाता हूँ, वह मेरे साथ-साथ चलते हैं। कदाचित् कोई आवश्यकता पड़ी तो वह उसकी तुरन्त पूर्ति करते हैं। राजा ने कहा– भगवन्! क्या ऐसे स्वामी मुझे भी मिल सकते हैं? महात्मा ने कहा– अवश्य! उन्होंने राजा को धर्मशास्त्र गीता पकड़ा दिया और कहा– साल–छः महीने इसके अनुसार अभ्यास करो। एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करके दो-ढाई अक्षर के किसी नाम का जप करो, सुबह-शाम हमें भी देख लिया करो कि कैसे हैं गुरुजी! साल–छः महीने देख ले गये तो उनमें भी भजन जागृत हो गया। अस्तु दुनिया की व्यवस्थायें तो सदैव घटती-बढ़ती रहती हैं, किन्तु भगवान की प्रदत्त व्यवस्था सदैव सुचारु रूप से चलती रहती है।

सत्संग में पली हुई एक कन्या का विवाह हो गया। वह ससुराल चली गयी। एक संन्यासी उधर से गुजरे। भिक्षा माँगा तो बहू ने भिक्षा दी। उसका आना, विनम्र होकर खड़ा होना, प्रणाम करना, भिक्षा देना और उसकी श्रद्धा-भावना को देखकर महात्मा को लगा कि बहू किसी भले घर से इस घर में आयी है। उन्होंने पूछा– "बेटा, तुम्हारी उमर कितनी है?" वह बोली– "महाराज, पाँच साल।" उसकी सास दरवाजे के पीछे से छिपकर सुन रही थी। जब नई-नई बहू आती है तो सास साल-छः महीने तक परीक्षा लेती ही रहती हैं। उसने सुना तो सोचा कि अरे! यह है तो 22 साल की युवती, और कहती है 5 साल! महात्मा बोले– "तुम्हारे पतिदेव की आयु कितनी है?" उसने कहा– "महाराज, दो साल।" "और ससुरजी की?" उसने कहा– "छः महीने।"

महात्मा ने पूछा– "और सास की उमर कितनी है?" बहू ने कहा– "उनका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ है।"

बुढ़िया सास बड़े जोर से चिल्लायी– "दौड़ो, दौड़ो गाँववालो! हमारी बहू पागल हो गयी है। मैं 60 वर्ष की हूँ, यह कहती है कि हमारा जन्म ही नहीं हुआ है। इसके ससुर 65 वर्ष के हैं तो यह कहती है कि छः महीने के हैं। हमारा पुत्र 25 वर्ष का है तो यह कहती है कि 2 साल का है। स्वयं यह 22 वर्ष की है तो कहती है 5 वर्ष की हूँ।" भीड़ जुट गयी। तरह-तरह की चर्चायें होने लगीं।

उन महात्मा ने कहा– "बेटा! तुमने जो कहा, वह किस आधार पर?" बहू बोली– "भगवन्! शरीर तो एक वस्त्र है। **'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'–** पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को फेंककर मनुष्य जैसे नया वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही यह आत्मा शरीररूपी वस्त्र को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेता है। **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'**– शरीरों का यह अन्तहीन क्रम चलता ही आ रहा है। कागभुसुण्डिजी ने कहा कि उन्होंने किस-किस योनि में जन्म नहीं लिया, किन्तु कौवे के शरीर में उन्हें रामभक्ति जागृत हुई। इसलिए वास्तविक आयु है आत्मिक जागृति। भजन की जागृति मुझमें पाँच साल से है। मेरे पति देवता में भी भजन दो वर्ष से विधिवत् जागृत हो गया है। छः महीने से हमारे ससुरजी भी भजन की जागृति में हैं। हमारी सासजी थोड़ा समय और लेंगी, जागृति तो इनमें भी अवश्य हो जायेगी।" तब सास ने सोचा कि बहू तो बहुत ही समझदार है।

इस ईश्वर-पथ में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। भजन में आवश्यकता मानव-तन की है, श्रद्धा और मन की है। आपका सम्पूर्ण धर्मशास्त्र गीता है। यह आदिशास्त्र है। इसका भाष्य 'यथार्थ गीता' है! चार बार यदि इसको आद्योपान्त पढ़ लेंगे तो न सन्देह है, न भविष्य में कभी होगा। साधना समझ में आ जायेगी। गीता के अनुसार साल–छः महीने अभ्यास हुआ तो भगवान गुरु भी ढूँढ़कर दे देंगे। और यदि सद्गुरु ही मिल गये तो शेष क्या रहा! **'सदगुर मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ।'** *(मानस, 4/17)* इसीलिए

भगवान का खूब भजन करो, गीता पढ़ो, दो श्लोक रोज पढ़ो। केवल अर्थ-अर्थ भी चार बार पढ़ लोगे तो स्पष्ट हो जायेगा कि मैं कौन हूँ?, अशुद्ध हूँ कि पवित्र?, भजन किसका करें, कैसे करें, क्यों करें? – सबका समाधान मिल जायेगा। गीता के अनुसार अभ्यास चला तो भगवान सद्गुरु का भी परिचय दे देंगे। उठाने-बैठाने-चलाने लगेंगे, भजन जागृत हो जायेगा।

आदिशास्त्र गीता के ही कारण भारत विश्वगुरु रहा है। गीता आपको बतायेगी कि धर्म क्या है! एक परमात्मा ही सत्य है। उसे धारण करने की विधि नियत कर्म और उसे आचरण में ढालना ही धर्माचरण है। यह धर्म न छूने से खत्म होता है, न पानी पीने से, न खाने से। हमारी श्रद्धा टूट भी जायेगी तो जहाँ से साधन छूटा था, अगले जन्म में वहीं से साधना आगे बढ़ जायेगी। श्रद्धा टूटने का अर्थ है– किसी भोग में हमारी वृत्ति बहक गयी। जिस कामना को लेकर वृत्ति विचलित हुई, वह वस्तु मिलेगी, भोगने में आयेगी। उसका कार्यकाल शान्त होते ही जहाँ से साधना छूटी थी, वहीं से पुनः आरम्भ हो जायेगी। भगवान कहते हैं– अर्जुन! इसमें आरम्भ का नाश नहीं है, बीज का नाश नहीं है। इसलिए '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**'– इस धर्म का स्वल्प अभ्यास भी जन्म-मृत्युरूपी महान भय से उद्धार करनेवाला होता है।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

संतो! सतगुरु अलख लखाया....

संतो सतगुरु अलख लखाया।
परम प्रकाशक ज्ञान पुंज, घट भीतर में दरसाया।
मन बुधि बानी जाहि न जानत, वेद कहत सकुचाया।
अगम अपार अथाह अगोचर, नेति नेति जेहि गाया।
सिव सनकादिक और ब्रह्मा के, वह प्रभु हाथ न आया।
व्यास बसिष्ठ बिचारत हारे, कोई पार नहिं पाया।
तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, व्रत तप माहिं समाया।
शब्द में अर्थ, पदारथ पद में, स्वर में राग सुनाया।
बीज माँहिं अंकुर तरु साखा, पत्र फूल फल छाया।
त्यों आतम में है परमातम, ब्रह्म जीव अरु माया।
कहैं कबीर कृपाल कृपा करि, निज स्वरूप परखाया।
जप तप योग यज्ञ ब्रत पूजा, सब जंजाल छुड़ाया॥

× × × ×

एक अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है कि भगवान सगुण हैं या निर्गुण? लोगों में प्रचलित है कि कबीर निर्गुण उपासक हैं और तुलसी सगुण उपासक। यह एक भयंकर भ्रान्ति है। उपासना जब भी चलती है तो सगुण से ही चलती है। 'स' माने वह परमात्मा, उनके गुणधर्म हृदय में प्रगट हो जायँ, उनके संरक्षण में चलते हुए दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति मिल जाय– यहाँ तक उपासना सगुण है, किन्तु प्राप्ति के पश्चात् उन महापुरुष की रहनी निर्गुण है। वह महापुरुष प्रकृति के गुणों से अतीत है इसलिए उनकी रहनी निर्गुण है। निर्गुण कोई उपासना नहीं है। कबीर भी एक सगुण उपासक थे–

साहब का घर दूर है, लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखै राम रस, गिरै तो चकनाचूर॥

उन परम प्रभु भगवान का घर बहुत दूर है, इतना लम्बा जैसे खजूर के पेड़ पर चढ़ना। यदि कोई इतनी दूरी तय कर ले गया, **'चढ़ै तो चाखै राम रस'**– चढ़ गया तो राम रस पा गया और गिर गया तो चकनाचूर। भगवान अलग हैं, अपने अलग है, चढ़ना-गिरना लगा हुआ है! आप ही विचार करें कि सगुण उपासक के और क्या लक्षण हैं?

कबीर ने भजन आरम्भ किया तो चिन्ता में पड़ गये कि माया कब क्या न कर बैठे –

श्रृंगी की भृंगी करि डारि, पारासर के उदर विदार।
रमैया की दुलहिन लूटल बजार।

सबकी बनी-बनायी प्रतिष्ठा को इस माया ने धूल में मिला दिया।

माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।

मधुर बोलकर जीव को फँसाती है। इसने किस-किस को ठगा?

केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ में भइ पानी।

कबीर ने कहा– हमने जान लिया है कि माया महाठगिनी है। यह चारों ओर से घेरा डालकर जीव के साथ-साथ चल रही है। माया से भयभीत वही कबीर 'साहब का घर दूर' माननेवाले, अपने कहीं दूर; उन्होंने जब पाया तो किस रूप में पाया?–

अवधू बेगम देश है मेरा।
तहाँ न उपजै मरै न बिनसे, नहिन काल का फेरा।

हे अवधू! मैं जिस देश में पहुँचा हूँ, वह एकदम बेगम है, अचिन्त्य है, अगोचर है, वाणी का विषय नहीं है, सामान्य मनुष्य की गम अर्थात् पहुँच से परे है – ऐसा मेरा देश है। वहाँ उत्पत्ति नहीं है, विनाश नहीं है, प्रलय नहीं है, परिवर्तन नहीं है। वहाँ न ईश्वर है, न जीव, न माया; न कोई पूजनेवाला और न कोई पूज्य।

तहाँ न सूर्य चन्द्र नहीं रजनी, नहीं तह अन्ध उजेरा।

सूरज, चन्द्रमा, अग्नि, अंधेरा, उजाला वहाँ कुछ भी नहीं है। तो अन्ततः वहाँ है क्या?

कहत कबीर सुनो भाई सन्तो, नहीं तहँ द्वैत बखेड़ा।

संतो! ध्यान दो, वहाँ द्वैत का बखेड़ा नहीं है। हम अलग, भगवान अलग, ऐसा कुछ नहीं है। जीव परमात्मा में समाहित हो गया। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन! मैं न तो यज्ञ से, न तप से, न योग से ही प्राप्त होनेवाला हूँ। मेरी प्राप्ति का एक सुगम उपाय है–

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ *(गीता, 11/54)*

हे अर्जुन! अनन्य अर्थात् अन्य न; मुझे छोड़कर अन्य किसी भी देवी-देवता को न भजते हुए जो केवल मुझे भजता है, उसके लिए मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए, स्पर्श करने के लिए और प्रवेश करने के लिए भी सुलभ हूँ। प्रवेश अर्थात् समाहित हो जाना। सेवक सदा के लिए खो गया, स्वामी ही शेष बच रहा। यही कबीर कहते हैं कि वहाँ द्वैत का बखेड़ा नहीं है। मुझसे भिन्न कोई सत्ता नहीं है। कबीर ने जब पाया तो गुणातीत में, बेगम में।

तुलसीदास जी को सब सगुण उपासक मानते हैं। वैष्णव संत के रूप में वह ठाकुरजी की घण्टी हिलाते रहे। उन्हीं तुलसीदास ने जब पाया तो लिखा–

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनि अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥

भगवान की भक्ति करने में अत्यन्त कठिन है। कहना तो आसान है किन्तु इसमें करनी अपार है। इसे वही जानता है जिससे करते बन गया। भक्ति एक कला है।

जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥

जल के प्रवाह में मछली पर्वत पर चढ़ जाती है, पानी की धारा के साथ छत पर चढ़ सकती है, वृक्षों पर चढ़ सकती है; क्योंकि वह तैरने की कला जानती है। पहाड़ी नदियों के तीव्र प्रवाह में मजबूत हाथी बह जाता है, उलट-पलट कर मर भी जाता है।

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बल तें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपिलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।

यदि शक्कर में बालू मिल जाय तो बलपूर्वक उसे कोई अलग नहीं कर पाता, किन्तु रस-विशेषज्ञ चींटी शक्कर का एक-एक कण निकालकर खा जाती है। इसी प्रकार भक्ति एक कला है। भक्ति है क्या?–

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी।।

समस्त दृश्य प्रपंच को हृदय में समाहित कर निद्रा का त्याग करके योगी परमात्मा में शयन करता है। वही परम पद का अनुभव करता है। वहाँ द्वैत का अतिशय वियोग है। द्वैत है ही नहीं। **'तुलसिदास कह चिद्बिलास जग बूझत बूझत बूझै।'**– तुलसीदास जी कहते हैं कि चित्त का प्रसार ही जगत् है लेकिन यह बात अभ्यास करते-करते ही समझ में आती है। वह पद है कैसा?

सोक मोह भय हरष दिवस, निसि देस-काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं।।

वहाँ शोक नहीं है, मोह नहीं है, हर्ष नहीं है, विषाद नहीं है, भय नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस दशा के बिना संशय कभी निर्मूल नहीं होता। सगुण उपासक तुलसीदास ने भगवान को पाया तो किस रूप में! **'अतिसय द्वैत वियोगी'**– जहाँ द्वैत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कबीर कहते हैं– **'नहिं तहँ द्वैत बखेड़ा'**। हर महापुरुष वही कह रहा है, भाषा चाहे जो रही हो। साधना के सही राह पर चलकर महापुरुष जब भी पाता है तो एक ही मंजिल और एक ही राह से पाता है। उपासना जब चलती है तो सगुण से आरम्भ होती है और अन्त में स्थिति मिलती है तो गुणातीत

में। माया के गुण-धर्मों से सर्वथा अतीत दशा का नाम निर्गुण है। निर्गुण कोई उपासना नहीं है। यह तो कबीर की वाणी समझ में नहीं आयी तो लोगों ने कह दिया कि यह निर्गुण कथन है।

इस पद में संत कबीर कहते हैं कि भगवान अचिन्त्य हैं, चित्त और चित्त की लहरों से परे हैं। वे इन्द्रियों से, दृष्टि से परे अमूर्त हैं। सृष्टि में जो कुछ दिखाई-सुनाई पड़ता है, इससे अतीत हैं। दृष्टि से परे हैं, इसलिए उन्हें अलख कहा गया है। किन्तु सद्गुरु ने उस अलख को भी लखा दिया। पहले नहीं देख पा रहे थे किन्तु सद्गुरु के कृपा-प्रसाद से वह देखने में आ गया। हमारे पास वह आँख नहीं थी, वह दृष्टि नहीं थी, हम देखना भी नहीं चाहते थे; सद्गुरु ने हमें पकड़कर उसे दिखा दिया। कैसा है वह अलख?–

परम प्रकाशक ज्ञान पुंज घट भीतर में दरसाया।

संत कबीर पढ़े-लिखे तो थे नहीं, लेकिन आँखें थीं, प्रत्यक्ष देख रहे थे। भगवान को परम प्रकाशक के रूप में देखा, जैसा अर्जुन ने देखा था। कबीर ने वही संदेश दिया जो गीता का है। गीता कहती है–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। *(13/17)*

हे अर्जुन! वह परमात्मा ज्योतियों का भी ज्योति, अंधकार से अत्यन्त परे, सर्वज्ञाता, ज्ञान द्वारा सबके लिए सुलभ है। वह रहता कहाँ है? भगवान कहते हैं– वह सबके हृदय में सदा निवास करता है। यह महापुरुष भी वही कहते हैं कि वह परम प्रकाशक है, ज्ञानपुंज है। प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ज्ञान है।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। *(13/11)*

पहले तो जीव अचेत है। जहाँ भजन जागृत हुआ, आत्मा जागृत हो गयी। आपकी ही आत्मा आपका मार्गदर्शन करने लगेगी। आत्मा से अभिन्न होकर भगवान बताने लगते हैं। उस आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना ज्ञान की जागृति है, निम्नतम श्रेणी है। उनके संरक्षण में निरन्तर चलते हुए परम तत्त्व

परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है और सृष्टि में जो कुछ भी है, अज्ञान है। कबीर भी भगवान को ज्ञानपुंज बताते हैं। भगवान कहाँ मिलते हैं? तो कबीर कहते हैं– **'घट भीतर दरसाया'**– हृदय के अन्दर दिखा दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। *(18/61)*

हे अर्जुन! वह ईश्वर सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। इतना समीप है तो लोग जानते क्यों नहीं? क्योंकि मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर सबलोग भ्रमवश चक्कर लगाते ही रहते हैं, इसलिये नहीं जानते। गीता का ईश्वर हृदय में! तो शरण किसकी जायँ?

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। *(18/62)*

इसलिये हे भारत! सम्पूर्ण भाव से उस ईश्वर की (जो हृदय-देश में स्थित है) अनन्य शरण को प्राप्त हो। उसके कृपा-प्रसाद से तू परमशान्ति, शाश्वत परमधाम को प्राप्त होगा। यही आशय कबीर का भी है। मानस में तुलसीदास कहते हैं– **'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।'** *(मानस, 1/22/7)*

वह प्रभु मन, बुद्धि और वाणी का विषय नहीं है–

मन बुधि बानी जाहि न जानत, वेद कहत सकुचाया।
अगम अपार अथाह अगोचर, नेति नेति जेहि गाया।।

वेद ने कहा कि वह अगम्य है, अपार है, अगोचर है, अथाह है, 'न इति', 'न इति'– इतना ही नहीं, आगे कुछ और है, वेद में जितना वर्णन है, उसके आगे भी कुछ है इसलिए सम्पूर्ण वर्णन वेद में भी नहीं है।

सिव सनकादिक और ब्रह्मा के, वह प्रभु हाथ न आया।

मानस में है कि–

बिष्नु बिरंचि संभु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।।
(मानस, 1/143/6)

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश उन प्रभु के एक अंश मात्र से विलय होते और प्रगट होते रहते हैं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई और तथा भगवान कोई और! सुग्रीव के परामर्श पर हनुमान जब प्रभु राम की परीक्षा लेने गये तो बोले– इस पहाड़ी पर ऐसी दिव्य मूर्ति हमने कभी देखी नहीं। आप मनुष्य हो ही नहीं सकते।

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार॥

(मानस, 4/1)

आप तीन देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कोई हैं या नर, नारायण हैं या आप चराचर जगत् के स्वामी साक्षात् परमात्मा हैं? इस प्रकार तीन देव कोई और, **'जग कारन भव तारन'** कोई और! विचारणीय है कि लोग भगवान के नाम पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक घूमकर खड़े हो जाते हैं, लेकिन यह महापुरुष क्या कह रहे हैं? इसी तरह का प्रकरण वहाँ भी है जब सती ने भगवान राम की परीक्षा सीता के रूप में ली। भगवान ने सती का कपट जान लिया तो उन्हें अपनी कुछ महिमा दिखा दी। सती ने देखा–

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाव एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सतीं विधात्री इन्दिरा, देखि अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप॥

(मानस, 1/54)

उन्होंने अनगनित सतियों, ब्रह्माणियों और लक्ष्मियों को देखा। अनन्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश भगवान की सेवा कर रहे थे। आज पूरा भारत या तो ब्रह्मा का उपासक है या विष्णु का उपासक वैष्णव है या शिव का उपासक शैव है। भगवान का उपासक कोई है ही नहीं। विचारणीय है कि यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं क्या? वास्तव में जब कोई अचेत जीवात्मा जागृत होती

है तो जागृति के प्रथम चरण में भगवान उसके हृदय में विधि-संचार कर देते हैं। परमात्मा की वह प्रशक्ति जो विधि-संचार करती है, ईश्वर-पर्यन्त साधना तय करा देनेवाली साधना-पद्धति प्रसारित करती है, उस प्रशक्ति का नाम है ब्रह्मा। विधि के अनुसार जहाँ साधक चला, संयम सधने के बाद जहाँ स्तर उठा तो भरण-पोषण करनेवाली प्रशक्ति का नाम है विष्णु। विश्व के हर कण में वह भगवान विद्यमान हैं। जिस स्तर पर आप खड़े हैं, भगवान वहीं से व्यवस्था करते चले जाते हैं। विश्व अणु से विष्णु! उन्हीं परमात्मा के वरदहस्त के नीचे चलते हुए साधक के शुभाशुभ संस्कारों का जो संहार करती है वह प्रशक्ति शिव है। अब न भले संस्कार, न बुरे; हृदय हो गया एकदम श्मशान। शिव के उभय प्रयोग हैं। संहार के साथ ही एक स्वरूप प्रकट होता है उसका नाम है शिवतत्त्व अर्थात् शुभाशुभ संस्कारों के संहार के साथ जो अवशेष बचता है वह है शिवतत्त्व, कल्याणतत्त्व परमात्मा। उसे जो जानता है वह तत्त्वदर्शी कहलाता है। वही सद्गुरु है, वही परम पूजनीय है। इसलिए साधक जब तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश की श्रेणी पर हैं तब तक उनकी साधना बाकी है।

सनकादिक अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और नारद– ये पाँच तत्त्व हैं। जब तक ये अलग हैं तब तक उस परमात्मा का भेद नहीं जानते। ये तत्त्व परम तत्त्व में विलीन हो गये तो वहाँ सहज स्वरूप भर रहता है। जब तक ये अलग-अलग हैं, साधना चलती ही रहेगी, प्रभु उनके हाथ में नहीं आते।

व्यास बसिष्ठ बिचारत हारे, कोई पार नहिं पाया।

व्यास, कौरव-पाण्डवों के कुलपुरुष बच्चों को समझाते ही रह गये किन्तु महाभारत होकर रहा। वशिष्ठ, रघुकुल के कुलगुरु अयोध्या को सुरक्षित करने में लगे रहे किन्तु अयोध्यावासी चले गये सरयू में। ये विचार करते ही रह गये, परमात्मा उनके हाथ नहीं आया।

सन् 1964 में भगवान ने हमें बताया कि तुम्हारी एक वृत्ति बाकी है, गीता लिखना है। वृत्तियों को हमने समाप्त तो किया नहीं था। जब सभी समाप्त हो गयीं तो हमने सोचा कि यह भी समाप्त हो जायेगी, करो भजन!

सात-आठ साल से ज्यादा ही हम टालते चले गये लेकिन वह आदेश बराबर पीछा करता रहा। फिर हमने लिखने का मन बनाया। हमें लिखना तो आता-जाता नहीं, बोल दिया, जो टेप में उतर गया; भक्तों ने लिपिबद्ध कर दिया। वही है 'यथार्थ गीता'।

हमने भगवान से पूछा– हो गयी गीता? आदेश मिला– अंग्रेजी में अनुवाद कराओ। हमने 'यथार्थ गीता' का अंग्रेजी अनुवाद तीन विद्वानों से अलग-अलग कराया। इसलिए नहीं कि कहीं कोई भूल न रह जाय बल्कि इसलिए कि भगवान कहीं ये न कह दें कि वृत्ति अभी शेष है। फिर भी सबसे पहले जिन्होंने अनुवाद किया, वही सफल रही। इसके पश्चात् हमने कुछ पूछा ही नहीं। भगवान ने ही अपनी ओर से बताया कि गीता लिखने में तुम्हारे 23 साल व्यर्थ हो गये। उन्होंने पुनः बताया कि लिखने-पढ़ने से भजन में रंचमात्र भी कोई सहयोग नहीं मिलता और अन्त में उन्होंने बताया– गीता तुमने लिखा ही नहीं। सोचिये, 23 साल हमारे व्यर्थ निकल गये और हमने लिखा ही नहीं? किन्तु बात भी ठीक थी, हमने लिखा ही कहाँ था! लिखने में जो भूल होती, भगवान सुधार देते थे। कहते थे– ऐसे नहीं, वैसे! इस प्रकार उन्होंने हमसे लिखवाया। हम तो केवल आदेश का पालन कर रहे थे। इसी प्रकार व्यास और वशिष्ठ इत्यादि विचार करते, लिखते-पढ़ते ही चले गये, परमात्मा को नहीं पा सके। वह परमात्मा कहाँ है? इस पर कहते हैं–

तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, व्रत तप माहिं समाया।
शब्द में अर्थ, पदारथ पद में, स्वर में राग सुनाया।
बीज माँहिं अंकुर तरु साखा, पत्र फूल फल छाया।
त्यों आतम में है परमातम, ब्रह्म जीव अरु माया।

जिस प्रकार तिल में तेल रहता है; काष्ठ में अग्नि होती है; यम, नियम, आसन और प्राणायाम इत्यादि सभी व्रत-तप के अन्तराल में समाहित रहते हैं; शब्द में अर्थ छिपा रहता है, परमपद में चारो पदार्थ– अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष विद्यमान रहते हैं; स्वर में छत्तीसों राग रहते हैं; बीज में जिस प्रकार

अंकुर, वृक्ष, शाखा, पत्र, फल-फूल और वृक्ष की छाया सब कुछ समाहित रहता है, उसी प्रकार से आत्मा में भी परमात्मा का निवास है। ब्रह्म, जीव और माया सब इसी आत्मा में होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन! आत्मा ही शत्रु और आत्मा ही मित्र है। जिस पुरुष की मनसहित इन्द्रियाँ जीत ली गयी हैं, उसके लिए उसी की आत्मा मित्र बनकर मित्रता में बरतती है, परम कल्याण करनेवाली होती है। उन्होंने आत्मा के तीन रूपों पर प्रकाश डाला–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ *(15/16)*

अर्जुन! संसार में पुरुष दो प्रकार का होता है– 'क्षर' और 'अक्षर'। कैसे पता चले, कौन क्षर है और कौन अक्षर है? इस पर कहते हैं– **'क्षरः सर्वाणि भूतानि'**। भूत माने जीवित प्राणी। प्राणीमात्र के शरीर क्षर पुरुष हैं, क्षरणशील हैं। **'कूटस्थोऽक्षर उच्यते'**– मनसहित इन्द्रियाँ जब कूटस्थ हो जाती हैं, संयम सध जाता है तो वह अक्षर पुरुष है, उसका कभी क्षय नहीं होता। अर्थात् इन्द्रिय स्तर तक जब तक जीवन है, अविद्या जिसका क्षेत्र है, अज्ञान जिसकी जानकारी है तो यह आत्मा जीवात्मा है। और जब मनसहित इन्द्रियों का संयम सध गया, विद्या जिसका क्षेत्र है, ज्ञान ही जिसका परिणाम है, तो वह कूटस्थ पुरुष; जिसका कभी विनाश नहीं होता, यह है ईश्वरात्मा। इनसे भी परे एक तीसरा पुरुष है–

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ *(15/17)*

उत्तम पुरुष तो अन्य ही है अर्थात् अनिर्वचनीय है। इसका कोई नाम नहीं, यह सर्वलोकों को व्याप्त करके स्थित है, इसे परमात्मा या पुरुषोत्तम कहा जाता है। आत्मा वही है, केवल विशेषण लग गया – जीवात्मा, ईश्वरात्मा और परमात्मा। और मनुष्य जब अचेत होता है तो **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'** *(गीता, 2/69)* जगत्‌रूपी रात्रि में सभी प्राणी निश्चेष्ट पड़े हैं। गीतोक्त साधना समझकर संयम सध जाता है तो पुरुष जग जाता है। जब

तक अचेतावस्था में है तब तक वह जीवात्मा है। कबीर कहते हैं– तुम्हारी आत्मा में ही परमात्मा है, बृहद् होने से ब्रह्म है, अचेत होने से जीव है, परिवर्तनशील होने से माया है – यही उस आत्मा की सीमायें हैं।

अन्त में कबीर कहते हैं–

कहैं कबीर कृपाल कृपा करि, निज स्वरूप परखाया।

संत कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ने कृपा करके इस अलख परमात्मा को हृदय में ही दिखा दिया। तुलसी कहते हैं– **'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।'**– उन्हें जानकर वही हो गया। सेवक सदा के लिए खो गया, स्वामी ही शेष बचा। प्रकृति पुरुषोत्तम में विलीन हो गयी। कबीर कहते हैं कि सद्गुरु कृपाल हैं। उन्होंने परमात्म-दर्शन करा दिया। कैसे? तो **'निज स्वरूप परखाया'**– अपने स्वरूप की पहचान दे दी। अब जिसे जानना था, जान लिया, स्वरूप ही परख लिया तो जप-तप किसके लिये करे? इस पर वे कहते हैं–

जप तप योग यज्ञ ब्रत पूजा, सब जंजाल छुड़ाया।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन! इस गीतोक्त कर्म को किये बिना न कोई पूर्व में पाया है, न भविष्य में कोई प्राप्त ही कर सकेगा। किन्तु कर्मों के परिणाम में जिन्हें आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त हैं, आत्मस्थित हैं (आत्मस्थिति का आशय है– **'निज स्वरूप परखाया'**) उस पुरुष के लिए किंचिन्मात्र भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्य नहीं है जिसके लिए वह अभ्यास करें। वे कर्म कभी न करें तब भी उन्हें कोई हानि नहीं है फिर भी वे महापुरुष लोकहित के लिए कर्म करते रहते हैं; क्योंकि महापुरुष जो आचरण कर जाते हैं, पीछेवाली पीढ़ियाँ उसी का अनुसरण किया करती हैं। हे अर्जुन! मुझे भी कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है, कर्म करने से मुझे लाभ नहीं, न छोड़ने से हानि; फिर भी मैं पीछेवालों के हित की इच्छा से भली प्रकार कर्म में बरतता हूँ।

महापुरुष को चाहिये कि स्वयं को जरूरत नहीं है फिर भी पीछेवालों के हित की इच्छा से भली प्रकार कर्म में बरतें। उनके लिये जप, तप, योग,

नियम से कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया। यही कबीर कहते हैं कि **'सब जंजाल छुड़ाया'**।

कबीर ने इसे विभिन्न दृष्टान्तों से समझाने का प्रयास किया। एक पद में वह कहते हैं– **'अवधू सहज समाधि भली।'** परमात्मा सहज है। **'विधि न बनाये हरि आप बनि आये।'** स्वयंसिद्ध है। सम और आदि से समाधि– यह **'गुरु परताप भयो जा दिन से सुरत न अनत चली।'** यह गुरु की कृपा से जिस दिन से प्राप्त हुई, सुरत अन्यत्र चली ही नहीं। अब जब मिल ही गयी तो बाकी क्या बचा? अब हम ढूँढ़ें किसे? आगे कोई सत्ता है ही नहीं। इसलिए–

आँख न मूँदू कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
उघरे नयना साहब देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ॥

ठीक इसी स्थिति का वर्णन कबीर की इन पंक्तियों में है कि **'जप तप जोग यज्ञ ब्रत पूजा, सब जंजाल छुड़ाया।'** परमात्मा एक परमधाम है तो सद्‌गुरु ही भजन की जागृति, पूर्तिपर्यन्त पथ-रक्षक और प्रवेश-द्वार हैं। प्रवेश मिल गया तो भगवान और भक्त एक। गुरु का कार्य पूरा हो गया। अब **'गुरु न चेला पुरुष अकेला।'** इसलिए जब किसी ने पाया तो माध्यम सद्‌गुरु रहे हैं। उस परमात्मा के दर्शन की विधि सद्‌गुरु से ही जागृत होती है। शिष्य को भी सदैव गुरु-आज्ञा के अन्तर्गत ही रहना चाहिये अन्यथा उसका कल्याण सम्भव नहीं है।

एक शिष्य ने गुरुजी से कहा– आज्ञा होती तो मैं वैराग्य (निराधार विचरण) कर आता। गुरु ने कहा– बेटा, माया बड़ी प्रबल है। अभी तुममें वह क्षमता नहीं है। शिष्य ने कहा– आपकी दया है तो माया क्या कर लेगी! गुरुदेव ने सावधान किया कि मेरी दया है तभी तो कह रहा हूँ। शिष्य ने प्रणाम किया और चल पड़ा। शिष्य कुटिया से अभी दो-एक किलोमीटर जंगल की ओर बढ़ा ही था कि एक बुढ़िया, जिसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं, कमर झुकी हुई किन्तु सतेज आँखें, हाथ में घोड़े की लगाम लिये तेजी से चली आ रही थी। ब्रह्मचारीजी ने सोचा कि लगता है उसका घोड़ा खो गया है।

यह पूछेगी तो मैं बता दूँगा कि घोड़ा इधर नहीं गया है, नहीं तो यह बेचारी जंगल में भटक जायेगी। बुढ़िया बाबाजी को एड़ी से चोटी तक देखते हुए आगे बढ़ गयी, पूछा ही नहीं।

ब्रह्मचारीजी से रहा नहीं गया। वह बोल पड़े– माताजी! कहाँ चली जा रही हैं? इधर तो कोई घोड़ा गया भी नहीं! उस महिला ने कहा– नहीं बाबा, यह लगाम मैं घोड़ों को नहीं, साधु-महात्माओं को लगाया करती हूँ। ब्रह्मचारीजी बिगड़ पड़े– चुड़ैल कहीं की! एक तो दयावश हमने पूछ लिया, ऊपर चढ़ी चली आ रही है। महात्माओं का तुम क्या कर लोगी? वह बोली– अच्छा बाबाजी, तो बचना।

ब्रह्मचारीजी आगे बढ़े तो एक नदी मिल गयी। उस दिन वर्षा से उस पहाड़ी नदी में कुछ जल हो गया था। इस पार एक नवविवाहिता किनारे बैठकर रो रही थी। सिर में सिन्दूर, पैरों में महावर, अंग-प्रत्यंग में आभूषण पहने किसी भले घर की कन्या प्रतीत हो रही थी। रोते-रोते उसका चेहरा लाल हो गया था। महात्मा ने सोचा कि कोई दुखियारी लगती है, पूछा– क्यों, तुम्हारे घरवाले बिछुड़ गये क्या? तुम्हारे साथ कौन है?

रोना बन्द कर वह चुपचाप उठी, चरणों पर कुछ रुपये चढ़ा दिये और बोली– महाराज! आप जाइये। यह संसार है, आपसे क्या मतलब! महात्मा ने सोचा– लगता है, इसके साथ कोई घटना घटित हो गयी है। उन्होंने पूछा– बात क्या है? वह बोली– मैं मायके से विदा होकर आ रही हूँ। तब संभावना नहीं थी कि नदी में जल होगा। आज अचानक पानी आ गया है। नदी उस पार हमारी ससुराल है जहाँ हमें जाना है। अब इसमें जाऊँगी तो बह जाऊँगी। कैसे जाऊँ? वापस जाती हूँ तो शुभ मुहूर्त में विदाई हुई है वह व्यर्थ हो जायेगा। अब तो हम कहीं के न रहे।

महात्मा ने कहा– अरे, विशेष पानी नहीं है। ठीक है, तुम हमारी यह छड़ी पकड़ लो। उसने छड़ी पकड़ ली और महात्मा के पीछे-पीछे चली। जब जल के पास आयी तो चीखकर वापस भाग गयी। महात्मा बोले– अब क्या हुआ? उसने कहा– मेरे पैर के रंग छूट जायेंगे, यह भी अपशकुन होगा।

महात्मा ने कहा– अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। वह विवाहिता उठी और महाराज के चरणों पर 1000 रुपया रख दिया कि हमें तो शेर-चीता खा लेंगे, इन पैसों का मैं क्या करूँगी? आप इसे ले लें, तीर्थयात्रा में काम आयेगा। और मुँह लटकाकर बैठ गयी।

महात्मा दयालु होते हैं। सोचा, है बड़ी धर्मात्मा! इसकी सहायता करनी चाहिए। उन्होंने पूछा– क्या कोई उपाय है? उसने कहा– महाराज! आप अपने कन्धे पर बैठाकर मुझे उस पार कर दें तो हो सकता है। महात्मा बिगड़े– मूर्ख कहीं की, कहती है कन्धे पर बैठा लो। ऐसा कैसे हो सकता है? वह बोली– महाराज! हम तो पहले ही कह रहे थे कि हमारी मौत निश्चित है। उसने रुपयों की पोटली ही महाराज के चरणों पर गिरा दी और बोली– आप जायें महाराज! महाराज ने इधर-उधर देखा, कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने सोचा– कोई देखता तो है नहीं। उन्होंने कहा– अच्छा बैठ कन्धे पर! वह बैठ गयी और जब नदी के बीच में पहुँची तो वही लगाम निकालकर बाबा के मुँह में डाल दिया। महात्मा बिगड़े– यह क्या कर रही है? उसने बाबा के घुटने में लगायी अपनी एड़ी और बोली– टिक-टिक-टिक-टिक.....चल। महात्मा ने ऊपर देखा तो वहाँ कोई विवाहिता नहीं बल्कि वही बुढ़िया थी। उन्होंने उसे उठाकर नदी में फेंक दिया और वह उस पार खड़ी दिखाई पड़ी। उसने कहा– बाबाजी! वो तुम्हारे गुरु बाबा की कृपा रही जो बच गये, नहीं तो तुम्हारे जैसे महात्माओं को मूली की तरह हम रोज ही चबाया करते हैं। इसलिए –

गुरु की आज्ञा उलंघि के, जो नर कतहूँ जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय॥

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

प्यास बुझावै बिन पानी

प्यास बुझावै बिन पानी, कोई पण्डित ज्ञानी।।
बिना अन्न रस भोग लगावै, बिन मुख पेट खाइ छकि जावे।
बिन कर करै, बिना पग धावै, बिन रसना बोले अमरितबानी।।
प्यास बुझावै.......

बिना भूमि का महल बनावै, बिन आधार की सेज बिछावै।
बिन नारी तिरिया संग सोवै, बिनु आनन्द सुखखानी।।
प्यास बुझावै.......

दान करे संकल्प नसावै, काया तजै देह लौ लावै।
बिना भाव का भरम मिटावै, सो पूरा दरबानी।।
प्यास बुझावै.......

त्यागी बनै राग न तोड़ै, जोगी बने समाधि न जोड़े।
न्यारा रहे संग ना छोड़ै, कह पुरुषोत्तम बानी।।
प्यास बुझावै.......

× × × ×

शरीर में पानी की कमी होने पर प्यास लगने लगती है, होंठ कुम्हला जाते हैं, जिह्वा तालु से चिपक जाती है, गला सूखने लगता है। महात्मा सूरदासजी का बहुत प्रसिद्ध भजन है– **'अखियाँ हरि दरसन की प्यासीं।'**– हैं तो प्रज्ञा-चक्षु फिर भी उनकी आँखों को प्यास है हरि-दर्शन की! संत कबीर कहते हैं– **'जुगन जुगन की तृषा बुझानी'** अन्तःकरण में चित्तवृत्ति में भी प्यास होती है। अनन्त तृष्णा, वासनाओं का अथाह समुद्र लहरा रहा है फिर भी तृष्णा कभी मरी नहीं, पूर्ण नहीं हुई।

समुद्र में ज्वार-भाटा आता ही रहता है। एक बार सागर की लहरों ने असंख्य हीरे-जवाहरात तट पर बिखेर दिये। लोगों के बर्तन, सन्दूक, घर सब भर गये, राजा-महाराजाओं ने अपने रिक्त कोष भरवा लिये फिर भी हीरे-जवाहरात

कम होने का नाम ही न लेते थे। एक महात्मा उधर से निकले। उन्हें मनुष्य की एक खोपड़ी मिल गयी थी, उसमें रत्नों को भरना आरम्भ किया। पूरे समुद्र के हीरे समा गये, लेकिन खोपड़ी खाली की खाली! चाह की खोपड़ी कभी भरती ही नहीं। राजनेताओं को बड़ा से बड़ा पद दे दें तब भी वे भूखे के भूखे रहते हैं और जब पद छिन जाये तब तो चेहरा देखते ही नहीं बनता। **'मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।'** *(मानस, 1/134/5)*

इच्छा अथाह समुद्र है। इसी का उग्र स्वरूप है तृष्णा। इधर संसाररूपी समुद्र में विषय-वारि है और उधर साधना के सही पथ पर चलते-चलते ज्यों-ज्यों विषयरूपी वारि कम होता जाता है, ब्रह्म-पीयूष मिलने लगता है। क्रमशः ब्रह्म भी अप्राप्य न रह जाय, ब्रह्म-पीयूष अलग न रह जाय तो ब्रह्म-पीयूष की भी चाह खतम हो जाती है।

तहाँ न ईश्वर जीव न माया, पूजक पूज्य न चेरा।

वहाँ न ईश्वर है, न ब्रह्म है, न माया। न कुछ पूजने योग्य है और न कोई पूजनेवाला ही। इस स्थिति में आकर ही इस जीवात्मा, मानव की प्यास सदा के लिये मिट जाती है और यह स्थिति किसी पंडित ज्ञानी को ही मिलती है।

प्यास बुझावै बिन पानी, कोई पंडित ज्ञानी।

अब यह पंडित कौन है? गोस्वामीजी कहते हैं–

चतुराई चूल्हे पड़ी, घूरे पड़ा अचार।
तुलसी राम भजन बिन, चारों बरन चमार॥

उस चतुराई को आग में डाल दें, वह आचार-विचार कचरे के गड्ढे में फेंक देने योग्य है। यदि एकमात्र परमात्मा राम का भजन नहीं है तो चारों वर्ण केवल चमड़ी के पोषक हैं, चमड़ी से प्रेम करनेवाले चमार हैं। जैसी चमड़ी का चिन्तन करते हैं, वैसा ही शरीर भविष्य में मिलता है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन! जो जिसका चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागता है उसी योनि को प्राप्त होता है और जो मेरा स्मरण करते हुए शरीर त्यागता है मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त होता है जहाँ से वह पीछे लौटकर आवागमन में

नहीं आता। इसलिए तू आज से ही निरन्तर मेरा चिन्तन कर और युद्ध कर। तू मुझे प्राप्त होगा। आज से ही कर, कल तो कभी आता ही नहीं। यदि आ भी गया तो आज कहलायेगा।

अर्जुन के समय तो युद्ध की संरचना थी, हम कौन-सा युद्ध करें? हमारा तो किसी से झगड़ा भी नहीं है। प्रतीत होता है कि यह गीता-ज्ञान केवल युद्ध करनेवालों के लिए ही है, किन्तु अगले ही श्लोक में योगेश्वर ने युद्ध का तरीका बताया कि यौगिक साधना-पद्धति अर्थात् गीतोक्त भजन की विधि को हृदय में धारण कर, वैराग्य में स्थिर रहकर, संगदोष से अलग रहकर चित्त को मेरे ध्यान में लगाये। सिवाय मेरे अन्य किसी का चिन्तन न करते हुए निरन्तर मेरा चिन्तन कर और युद्ध कर।

विचारणीय है कि एकान्त-देश का सेवन है, हमें छोड़कर वहाँ कोई है भी नहीं, पता नहीं हम झगड़ा किससे करेंगे? कैसा है यह युद्ध? झगड़ा तब होता है जब किसी वस्तु में हमारा और किसी अन्य के राग का टकराव हो। 'यह पेड़ आपका नहीं, हमारा है' तो लड़ सकते थे, किन्तु जब लगाव ही नहीं है तो पेड़ खड़ा रहे चाहे गिर जाय; हमसे मतलब? मान लें यह कलम भगवान है तो इसके अगल-बगल यह कागज, यह टेबल न दिखाई पड़े। दिखायी पड़ता है तो युद्ध ही अधूरा है। इस प्रकार अन्य किसी का चिन्तन न करते हुए निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर।

स्पष्ट है कि यह अन्तःकरण की लड़ाई है। मान लें, आप चित्त को सब ओर से समेटकर चिन्तन में लगा रहे हैं। चिन्तन में तो आप आज लग रहे हैं, पहले तो चिन्तन में लगते ही न थे। चिन्तन में लगते ही आपका मन जो धन्धा जन्मान्तरों से करता आया है, वही स्फुरण आपके अन्दर उठने लगेंगे, काम-क्रोध-लोभ-मोह की लहरें उठने लगेंगी। आप ताश खेलें, अतीत का कोई विचार नहीं आयेगा। इसी प्रकार नृत्य देखें तो मुस्कुराते रहेंगे, बैठे रहेंगे, पुरानी कोई बात स्मरण में आयेगी ही नहीं; किन्तु एकान्त में बैठकर भजन करने लगें तो दस वर्ष पूर्व की घटना, जिसे आप भूल चुके थे, मन वह फाइल खोलकर भी रख देगा कि जरा इसे भी पढ़कर देखो। सब ओर

से चित्त समेटकर एकान्त में शान्ति से ज्यों ही आप चिन्तन में बैठेंगे, मायिक प्रवृत्तियाँ बाधा के रूप में प्रत्यक्ष ही हैं। इन मायिक प्रवृत्तियों का पार पाना ही युद्ध है। इस युद्ध में यदि एक बार विजय मिल गयी तो वह शाश्वत विजय है जिसके पीछे कभी हार नहीं है। आपको मिल जायेगा सदा रहनेवाला जीवन और सदा रहनेवाली शांति। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। *(17/23)*

ओम्, तत् और सत् – ऐसा तीन प्रकार का नाम परमात्मा का है जो प्रसारित हुआ है। इसी के द्वारा ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रचे गये। कौन-सा यज्ञ रचा गया? वही जैसा अभी बता आये हैं कि योगविधि यज्ञ है जिसका वर्णन गीता, अध्याय 4 में है कि योगी लोग इन्द्रियों के बहिर्मुखी प्रवाह को संयमरूपी अग्नि में हवन करते हैं, श्वास को प्रश्वास में हवन करते हैं, प्रश्वास को श्वास में हवन करते हैं, श्वास-प्रश्वास की गति को रोककर प्राणायाम के परायण हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि श्वास अग्नि, प्रश्वास अग्नि, प्राणायाम अग्नि, संयम अग्नि, योगाग्नि, ज्ञानाग्नि – इन सबमें कहीं आग नहीं जलती। अग्नि तो एक दृष्टान्त है। जिस प्रकार अग्नि में आप कुछ भी डाल दें, भस्म हो जाता है; उसी प्रकार संयम भी एक अग्नि की तरह है जिसमें पड़कर इन्द्रियों का बहिर्मुखी प्रवाह शान्त हो जाता है। प्राणायाम भी एक ऐसी अग्नि है कि प्राणों का व्यापार, मन की भाग-दौड़, संकल्प-विकल्पों का स्फुरण– इन सब पर विराम लग जाता है। यह मन की निरोधावस्था है। इसी निरोध के साथ ही यज्ञ का परिणाम निकल आता है – अमृत का भोजन और सनातन ब्रह्म में स्थिति। इस प्रकार परमात्मा के मुख से ही यज्ञ प्रसारित होता है। जब आप यज्ञ में प्रवृत्त होंगे तो भगवान मार्गदर्शन करने लगते हैं, बोलने-बताने लगते हैं। श्रद्धापूरित हृदय से जब आपका सम्बन्ध भगवान से जुड़ जायेगा तो वेद की रचना होने लगती है। जो तत्त्व अविदित है विदित होने लगता है। वेद अपौरुषेय है। परमात्मा के श्रीमुख की वाणी है, सीधा प्रसारण है। वह अपौरुषेय वाणी सीधे प्रसारित होने लगती है। साधक समझता जाय और

चलता जाय। इस जागृति के पश्चात् केवल आज्ञापालन ही भजन है। आदेश समझें और लगें। यही है वेद रचे गये।

इस प्रकार की साधना में चलते-चलते साधक जहाँ मूल, उन परमात्मा का स्पर्श किया तो **'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः'**– जो अविदित तत्त्व है उसका विदित होना वेद है। जब अन्तिम स्तर तक विदित हो गया, जहाँ उससे संयुक्त हुआ, वह ब्राह्मण है। इस प्रकार ब्राह्मण रचे गये। ब्राह्मण एक रचना है। ब्राह्मण जन्मना नहीं होता। **'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।'** उन्हें जानकर उन्हीं में स्थिति मिल गयी। वह ब्रह्म से संयुक्त है, रञ्चमात्र भी ब्रह्म अलग नहीं, ब्राह्मण है। ब्राह्मण एक स्थिति है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ *(गीता, 4/19)*

जिस पुरुष के द्वारा सम्पूर्णता से आरम्भ किया हुआ कर्म (गीतोक्त नियत कर्म) संयम के साथ विधिवत् प्रारम्भ किया हुआ कर्म (आराधना, चिन्तन) **'कामसंकल्पवर्जिताः'**–इतना उन्नत हो गया कि काम माने कामनायें, इच्छायें– इनसे ऊपर उठ गया। यह मन की निरोधावस्था है। संकल्प-विकल्प का ही दूसरा नाम मन है। इस निरोध के साथ साधक जिसे जानना चाहता था, वह जानने में आ जाता है। साक्षात् के साथ मिलनेवाली जानकारी का नाम ज्ञान है। **'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं'**– इस ज्ञानाग्नि में कर्म सदा के लिए दग्ध हो जाते हैं। जो संस्कारों की रील में थे वे और वह नियत कर्म जिसे करना अनिवार्य था, ये दोनों कर्म दग्ध हो जाते हैं। **'तमाहुः पण्डितं बुधाः'**– इसी स्थितिवालों को बोधस्वरूप महापुरुषों ने पण्डित कहकर सम्बोधित किया है। पण्डित एक स्थिति है। ऐसे महापुरुषों की रहनी कैसी होती है?–

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ *(गीता, 5/18)*

विद्याविनययुक्त ब्राह्मण में और एक चाण्डाल में (जो एक सियार लटकाये घूम रहा है उसमें) तथा गाय, कुत्ता या विशालकाय हाथी में **'पण्डिताः**

समदर्शिनः'– जो पण्डित हैं वे समान दृष्टिवाले होते हैं। उनकी दृष्टि में विद्याविनययुक्त ब्राह्मण न कोई विशेषता रखता है और न ही वह चाण्डाल कोई हीनता रखता है। वह महापुरुष यह जानते हैं कि जो विप्र है, लक्ष्य के थोड़ा करीब है और चाण्डाल लक्ष्य से कुछ दूर बाल्मीकि की तरह खड़ा है, अंगुलिमाल की तरह है; लेकिन है इसी पथ का पथिक। यदि उसे दुर्लभ मानव-तन मिला है तो अधिकारी है। हाँ, वह थोड़ा भटका हुआ है। उन महापुरुषों की दृष्टि में न कुत्ता अधर्म है, न गाय धर्म और न विशालकाय होने से हाथी ही कोई विशेषता रखता है। पण्डित इन सबमें समान ही दृष्टिवाले होते हैं। उनके पास न तो मायारूपी वारि का प्रपंच है, न ब्रह्मपीयूष ही दिखाई देता है जिसे वह प्राप्त करें; क्योंकि वह ब्रह्ममय हो गये हैं। उनकी प्यास मिट चुकी है और दूसरों की प्यास भी यही मिटायेंगे– **'प्यास बुझावै बिन पानी, कोई पण्डित ज्ञानी।'**

जल के दो दृष्टान्त दिये जाते हैं। एक तो है विषयरूपी वारि और दूसरा है ब्रह्मपीयूष।

ब्रह्मपियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय कारन निसि बासर धावै।।
माधव! असि तुम्हारि यह माया।। *(विनयपत्रिका, 116)*

यदि जीव को ब्रह्मपीयूष-जैसा मधुर शीतल जल मिल जाय तो वह अनित्य, नश्वर, झूठे विषयरस के पीछे मृग की तरह भला क्यों भागता फिरेगा! पण्डित वे हैं जिन्होंने उन प्रभु को प्रसन्न कर लिया है। वही परमहंस कहलाते हैं। वही सद्गुरु हैं जिन्होंने अपनी प्यास बुझा ली है, जो इस रास्ते से गुजर चुके हैं। वही दूसरों को भी चलायेंगे और लक्ष्य तक पहुँचा देंगे। ऐसे महापुरुष लोकहित के लिये कार्य करते हैं। स्वयं के लिए तो उनका कोई प्रयोजन ही नहीं रहता। दूसरों के कल्याण का स्रोत इन्हीं तत्त्वदर्शी महापुरुषों से, इन्हीं पण्डितों से निकला है। वे सबको राह कैसे पकड़ाते हैं?

बिना अन्न रस भोग लगावै, बिनु मुख पेट खाइ छकि जावै।
बिनु कर करै बिना पग धावै, बिनु रसना बोले अमरित बानी।।

शरीर का भोजन रोटी, दाल, अन्न और षडरस है, किन्तु आत्मा की खुराक में भजन ही भोजन है। उसमें अन्न या रस नहीं लगता। 'र' की धारा में रमण करना ही रोटी का खाना है। जो आत्मपर्यन्त दूरी तय करा दे वह भजन ही भोजन है। महापुरुष वह भजन जागृत कर देते हैं। यही है बिना अन्न रस भोग लगाना। यह भोजन मुख से नहीं खाया जाता, पेट में नहीं जाता। चिन्तन मन से किया जाता है। कदाचित् कोई साधक कहीं लड़खड़ाता है तो–

बिनु कर करै बिना पग धावै, बिन रसना बोले अमरित बानी।
.......कोई पण्डित ज्ञानी।

उन दिनों सती अनुसुइया आश्रम घनघोर जंगल में था। अब तो वहाँ बाजार-सा हो गया है। मेला लगता है वहाँ पर। एक संत ने वहाँ पर अनुसुइया जी का भव्य मंदिर बनवा दिया है जहाँ दर्शन के लिये भीड़ टूट पड़ी है। न दिन में चैन, न रात में! लेकिन हमारे गुरु महाराज को जब भगवान ने वहाँ बैठाया था, वर्षा के चार-चार महीनों तक आदमी से भेंट ही नहीं होती थी कि आदमी होता कैसा है? उस जंगल में महाराजजी अकेले निवास करते थे। क्रमशः चार-छः साधक-शिष्य भी आपकी सेवा में आ गये।

एक दिन एक साधक ने गुरु महाराज से निवेदन किया कि भगवन्! हमलोगों ने इसी जंगल में एकान्त में एक कुटिया बनायी है। आदेश होता तो मैं वहीं अकेले रहकर भजन करता। वह कुटी महाराजजी के आश्रम के समीप ही थी, आश्रम से लगभग आधा किलोमीटर दूर। उस कुटिया के बगल से ही शेर मंदाकिनी में पानी पीने जाया करते थे। गुरु महाराज ने उनका अनुरोध सुना तो बोले– ठीक है, वहीं रहा करो। सात दिन में एक दिन आकर हमें प्रणाम कर लिया करो। जाओ, करो भजन।

उन शिष्य ने कुटिया के बाहर एक मचान बना लिया था। जंगल में यत्र-तत्र बिखरी लकड़ियों को एक सीध में रखकर बैठने और लेटने जितना मचान था। उसी पर बैठकर वह रात्रि में भजन किया करते थे। गर्मियों के दिन थे। वहाँ न बिजली थी, न पंखा और न प्रकाश की ही कोई व्यवस्था! एक

दिन वह मचान पर भजन कर रहे थे। अनुभव में उन्हें आदेश मिला– आज सोना मत! भजन में लगे रहो। धीरे-धीरे रात्रि के बारह बज गये, एक बज गये। कमर दर्द करने लगी। उन्होंने सोचा– सोयेंगे नहीं, थोड़ा लेटकर कमर सीधी कर लें। जहाँ मचान के कुन्दों से पीठ लगी, आराम मिला कि नींद आ गयी। इतने में एक चित्तीदार शेर (गुलबाघ) मचान के सामने पिछले पंजों पर बैठकर अध्ययन करने में लगा था कि मचान पर उदरपूर्ति-हेतु पर्याप्त भोजन है या नहीं? वह शिर ऊँचा कर कुछ सूँघ रहा था।

इतने में गुरु महाराज की आवाज गूँजी। आवाज ही नहीं गूँजी, बल्कि गुरु महाराज ने उन शिष्य का हाथ पकड़कर उन्हें लगभग एक फीट ऊपर उठा दिया और बोले– "कहा था न, सोना मत। गँवार कहीं का। बैठ!" वह साधक आधा तो उठ ही गये थे, नींद भाग चुकी थी। सामने देखा तो अंधेरे में काला-काला कुछ बैठा-सा दिखाई पड़ा। उन्होंने टार्च जलाया तो सामने शेर था। वह धीरे से उठा और झाड़ी की ओट में हो गया। वह वहीं श्वास रोके रातभर खड़ा रहा। प्रातः लगभग पाँच बजे वह दौड़ते हुए एक छलांग में ही नदी पार कर गया। थोड़ी ही देर में जब उधर से जानवरों की चिक-पिक सुनाई देने लगी तब उन साधक को लगा कि शेर अपने भोजन की टोह में निकल पड़ा है। इस प्रकार महापुरुष **'बिनु कर करै'**– हाथ तो वहाँ था नहीं लेकिन हाथ से पकड़कर उठा दिया। **'बिना पग धावै'**– ऐसे महापुरुष को कहीं भी पुकार लोगे, आपके घर में भी दिखाई पड़ेंगे और **'बिनु रसना बोलै अमरित बानी।'**– इतनी जोर से आवाज गूँजी कि 'उठ! कहा था न, सोना मत। सो गये।'

बिना भूमि का महल बनावै बिन अधार की सेज बिछावै।

साधक धीरे-धीरे संसार का सम्बन्ध तोड़कर मन को शून्य में स्थिर कर लेता है। शून्य कहते हैं आकाश को, पोल को। जब मन संकल्प-विकल्प से रहित, वाह्य प्रपंच से भी रहित, देहाध्यास से भी रहित होकर शून्य में स्थिर होने लगता है तो इसका नाम है चिदाकाश। वहाँ भूमि नहीं होती। ऐसे योगी

संत की रहनी **'बिना भूमि का महल'**– मन शून्य में टिकने का अभ्यास बना लेता है। यही कबीर भी कहते हैं– **'छाओ छाओ हो फकीर गगन में कुटी।'** कोई कहता है महल बनाया, कोई कहता है कुटी बनायी – आशय एक ही है।

मनुष्य वहीं रहता है जहाँ उसका मन रहता है। यहाँ योगी का मन शून्य में स्थिर हो गया। धीरे-धीरे वही उसका आवास बन गया। वह शरीर के सम्बन्ध और देहाध्यास से भी ऊपर, पृथ्वी के समस्त ऐश्वर्य और इन्द्रियों से मिलनेवाले सुखों से ऊपर प्रभु के लिए बिना आधार की सेज बिछा लेता है–

सुरत की सेजिया सजाय लो, अँधेरिया में का करिहौ?
येहीं उजियरिया में बिछाय लो, अँधेरिया में का करिहौ?

इस शरीर में जब तक दम-खम है, इन्द्रियों में जब तक सामर्थ्य है तभी तक प्रकाश है। इसी उजाले में भगवान के लिये आसन सजा लो, अँधेरे में क्या कर लोगे? उस समय खड़े हो गये तो चलना कठिन, लेट गये तो उठकर बैठना कठिन, प्रातः जो याद था दोपहर तक भूल गये, फिर आप भजन कैसे कर लेंगे; क्योंकि भजन तो स्मृति के साथ करने की वस्तु है। जो उम्र कमाने-खाने की होती है वही भजन करने की है। ऐसा नहीं है कि युवावस्था में अर्थोपार्जन करने में लगे रहें, वृद्धावस्था में भजन कर लेंगे। जो करना है आज करें, अभी से करें।

भगवान के लिये आसन, सुरत की शय्या बिछा लें। मन की दृष्टि का नाम सुरत है। आप यहाँ बैठे हैं, यहाँ के दृश्यों में भूले हैं, सहसा कोई कान में कह दे कि नाती छत से गिर गया, बेहोश है, अस्पताल गया। उस समय मर्यादावश भले ही आप यहाँ बैठे रहें, आपके कान खुले होने पर भी आपको यहाँ का कुछ भी सुनाई नहीं पड़ेगा। उसके स्थान पर आपकी आँखें खुली होने पर भी आपको यहाँ का दृश्य दिखाई नहीं पड़ेगा। उसके स्थान पर आपके समक्ष आपके नाती का चेहरा दिखने लगेगा। उसकी बरौनी कैसी, चितवन कैसी, उँगलियाँ कैसी, नाक कैसी, दाँत कैसे – उसका एक-एक रोम

दिखाई पड़ने लगेगा। वस्तु न रहने पर भी जो वस्तु का नक्शा खींच लेती है, मन की इस दृष्टि का नाम सुरत है। इसे सब ओर से समेटकर चिन्तन में लगा दें। सुरत ने जहाँ स्थायित्व लिया, भगवान के लिए आसन तैयार हो गया। यही है '**सुरत की सेजिया बिछाय लो**', यही है–'**बिना भूमि का महल बनावै, बिन आधार की सेज बिछावै।**'

सुरत की यह सेज बिना आधार की है, चिदाकाश में लगती है। और–

बिन नारी तिरिया सँग सोवै, बिन आनन्द सुखखानी।

वहाँ कोई नारी नहीं है वह सदैव तुरीयावस्था में रहता है–यही तिरिया है। वह मनरूपी तुरंग पर सदा असवार, उसका मन पर सदा नियन्त्रण है। यह शान्तिवाली अवस्था उसमें सदा विद्यमान रहती है। वाह्य वस्तुओं के संसर्ग से प्राप्त होनेवाले सुख या दुःख उसके पास नहीं हैं। अब वह सहज आनन्द-सिन्धु में निमग्न है। इन्द्रियों और विषयों के संसर्ग से प्राप्त होनेवाले सुख के न होने पर भी वह आनन्द की खानि है, प्रभु के वरदहस्त के संरक्षण में है। रामचरितमानस में है–

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।

(मानस, 1/196/5)

जो आनन्द के समुद्र हैं, सहज सुख की राशि हैं। उस सुख की राशि से एक बूँद भी जिसके लिए छिड़क दें, वह साधक तीनों लोकों में सुपास पा जाता है, सुविधा और संतुष्टि पा जाता है। उसके लिये विघ्न है ही नहीं। इसलिए जब सुरत शून्य में स्थिर हो गयी, प्रभु के लिये शय्या तैयार हो गयी तो आनन्दसिन्धु भगवान का संचार मिल जाता है। उस समय वह सर्वस्व का समर्पण कर देता है।

दान करे संकल्प नसावै काया तजे देह लौ लावे।
बिना भाव का भरम मिटावै सो पूरा दरबानी।।

भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, लोगों की आवश्यकतानुसार उपयोगी वस्तुओं का बिना मूल्य अर्पण दान कहलाता है। दान परमात्मा की ओर है।

जितना जिसने दान दिया, मान लें किसी ने मुट्ठीभर अन्न दान में दिया तो एक मुट्ठीभर संसार छूट गया, उतनी वस्तु से सम्बन्ध छूट गया। दान में लोग बहुत कुछ दे देते हैं। दधीचि ने अपनी हड्डियों को दान में दे दिया। अष्टावक्र ने जनक से मन का दान माँगा। अध्यात्म में गुरु महाराज को तन-मन समर्पित करने का विधान है–

तन मन अर्पण करिहौ, तुम चलो दिवाने देस।

मन का समर्पण आवश्यक है। किसी बबूल के वृक्ष को गुरु महाराज आम कह रहे हैं तो मान लो वह आम है, तुम्हें आम का ही फल मिलेगा। कोई वस्तु आकर्षक लग रही है किन्तु गुरु महाराज मना कर रहे हैं तो उससे दूर ही रहो। तुम आज की देख रहे हो जो आँख से दिखाई दे रहा है, इतना ही जानते हो; किन्तु गुरु महाराज देख रहे हैं कि दस साल बाद तुम्हारी चित्तवृत्ति क्या बदलती है? क्या पायेगी?–उसे जानते हैं। उनके निर्देशन के तद्रूप जब समर्पण हो जाय तभी सर्वस्व का समर्पण हो पाता है। इसी का नाम दान है। जब मन ही दे दिया तब संकल्प कौन करे? फिर तो **'काया तजे'**– काया तो संस्कार है। जैसा संस्कार वैसा ही शरीर मिलता है। जन्म-मृत्यु का कारण संस्कारों की रील है। संकल्पों का दान होते ही–

मन मिटा माया मिटी हंसा बेपरवाह।
जाका कछु न चाहिए सोई शाहंशाह।।

इस अवस्था का महापुरुष शरीर से भला करे चाहे बुरा, योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण होते हैं। उनके न शुभ संस्कार पड़ते हैं, न अशुभ। वे महापुरुष लोकहित के लिए कर्म करते हैं। महापुरुष जो प्रमाण कर जाते हैं, पीछेवाली पीढ़ियाँ उसी का अनुसरण किया करती हैं। उन महात्मा को आवश्यकता नहीं है फिर भी उन्हें लोकहित के लिए क्रिया में बरतना चाहिए। यही कारण है कि वे देह से भला-बुरा कर्म अकारण ही करते रहते हैं। उनकी उसमें कोई रुचि नहीं, कोई लिप्सा नहीं। **'पद्मपत्रमिवाम्भसा'**– कमल के पत्तों पर घड़ों पानी डालें, थोड़ी ही देर में वह सूखा का सूखा मिलता है। ऐसे महापुरुष– **'बिना भाव का भरम मिटावै।'**

भाव होता है अपने से श्रेष्ठ में, माता-पिता, गुरु या भगवान में। प्रेमास्पद प्रभु जब भिन्न नहीं रह गये, अभाव है ही नहीं, भगवान विलग नहीं हैं, जब रंचमात्र भी भाव या अभाव नहीं रह जाता तो भ्रम सदा के लिए समाप्त हो जाता है। **'सो पूरा दरबानी'**– वह भगवान का सच्चा दरबान है। गुरु महाराज कहा करते थे– "हो! हम भगवान के दूत हैं, द्वारपाल हैं। हमसे मिले बिना कोई भगवान तक नहीं पहुँच सकता।" भगवान के धाम में प्रवेश सद्‌गुरु से होकर है। वह भगवान के द्वार के पहरेदार हैं। वही सद्‌गुरु होते हैं। ऐसी स्थितिवाले महापुरुष से ही भजन की जागृति सम्भव है। इस प्राप्ति के पश्चात्–

त्यागी बने राग ना तोड़े, जोगी बने समाधि न जोड़े।
न्यारा रहे संग ना छोड़े, कह पुरुषोत्तम बानी॥
......कोई पण्डित ज्ञानी॥

उस समय वह महापुरुष पूर्ण त्यागी हैं। उनके लिये किसी व्यक्ति या वस्तु में राग बचा ही नहीं लेकिन लोकहित के लिए वह सबसे सम्बन्ध बनाये रखते हैं। वह पूर्ण योगी हैं, परमात्मा के स्वरूप से मिलन है, उनमें स्थिति है लेकिन बाहर लोगों को वह भजन करते दिखाई नहीं देते। ऐसी स्थितिवाले योगी कब भजन करते हैं, पास में रहनेवाला भी नहीं जान पाता जब तक कि वह स्वयं न बता दें। वह सबसे निर्लेप हैं, किन्तु **'संग ना छोड़े'**– सबके संग में दिखाई पड़ेंगे। **'कह पुरुषोत्तम बानी'**–यह उत्तम पुरुषों की वाणी है।

इस भजन में गीता का ही भाव अपने शब्दों में दिया गया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया– अर्जुन! गीतोक्त आत्मदर्शन की नियत विधि यज्ञ है। उस विधि को क्रियान्वित करना ही कर्म है। गीतोक्त कर्म है आराधना। इस कर्म को किये बिना सृष्टि में न कभी किसी ने भगवान को पाया है न भविष्य में कभी कोई प्राप्त कर सकेगा, किन्तु इस नियत कर्म के परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त और आत्मस्थित है उस पुरुष के लिए किंचित् भी कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। उसे प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्य नहीं है इसलिए कर्म किये जाने से न उसे लाभ है और न कर्म छोड़ देने से कोई क्षति। वह कर्म करे भी तो सुनेगा कौन? आगे कोई सत्ता अलग नहीं

है तो जवाब कौन देगा? फिर भी ऐसे महापुरुष पीछेवालों के हित की इच्छा से, लोकहित की भावना से भली प्रकार कर्म में बरतते हैं।

ऐसी स्थितिवाले महापुरुष से अपनी तुलना करते हुए भगवान ने कहा– अर्जुन! मुझे भी तीनों कालों में कोई कर्म शेष नहीं है, प्राप्त होने योग्य कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है फिर भी मैं पीछेवालों के हित की इच्छा से कर्म में ही बरतता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मेरा अनुकरण कर समाज भी कर्म छोड़ बैठेगा, नष्ट हो जायेगा, वर्णसंकर हो जायेगा और मैं इस प्रजा का हत्यारा कहलाऊँगा। इसलिए महापुरुष को चाहिये कि स्वयं करते हुए सबसे कराये। महापुरुष जो प्रमाण कर जाता है, समाज उसी का अनुसरण करता है। इसीलिए वे समाज को कर्म करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; क्योंकि कर्म से भाग्य के असाध्य कुअंक भी मिटाये जा सकते हैं।

कभी-कभी घटनायें ही व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन कर देती हैं। जीवन के आरम्भिक दिनों में दस्यु रहे एक व्यक्ति को डाका डालने से नफरत हो गयी। वह एक महात्माजी की कुटिया में जाकर बोला– सन्तजी! हमें शिष्य बना लें। महात्मा ने उसकी लाल-लाल आँखें, भयंकर चेहरा, ऐंठी हुई मूँछें देखी। उसे चाय पिलाकर बोले– भगतजी! आगे और अच्छी कुटिया है, आप आगे बढ़ लें। दो-चार महात्माओं ने उसे इसी तरह आगे बढ़ा दिया। अन्ततः एक महात्मा ने उसे स्वीकार करते हुए कहा– यह झण्डा काला है। इसे बाँस में लगा लो। भगवान के इस नाम का जप करो। भूख लगने पर भिक्षा माँग लिया करो और दिन-रात जप करते रहो। जिस दिन यह काला झण्डा सफेद हो जाय, हमारे पास आ जाना।

'जो आज्ञा गुरु महाराज!' कहकर वह व्यक्ति चल पड़ा। उसी तरह जीवन-यापन करते उसे साल-डेढ़ साल बीत चला। प्रतिदिन वह देख लेता था कि झण्डा सफेद हुआ या अभी काला ही है। वह पुनः नाम-जप में लग जाता।

गाँव में बस्ती से दूर-दूर भी कुछ घर बन जाया करते हैं। इसी तरह का एक घर गाँव से बाहर एकान्त में था। वह महात्मा उस घर से थोड़ी दूर

पर एक पेड़ के नीचे आसन लगाकर भजन कर रहे थे। रात में उस घर में चार लुटेरे पहुँच गये। संयोग से उस रात उस घर के पुरुष आवश्यक कार्य से कहीं बाहर चले गये थे। घर में केवल चार सयानी कन्यायें ही थीं। उन्होंने बहुत हल्ला मचाया। पूरा गाँव जग गया। लोग दूर से ही आश्वासन देने लगे– घबड़ाना नहीं, हम आ रहे हैं। घेरो रे! चलो रे! भागने न पायें। लोगों ने खूब शोर मचाया लेकिन आया कोई नहीं।

लुटेरों ने रुपये-गहने बाँध लिये और चारों कन्याओं को भी घसीटकर ले जाने लगे। अब उन महात्मा से नहीं रहा गया। वह विचार करने लगे कि मुझमें क्षमता है कि मैं इनकी रक्षा कर सकता हूँ। मैं ठहरा साधु! सांसारिक प्रपंचों में उलझने से कहीं पाप न हो जाय? यही सब छोड़कर तो मैं आया हूँ। भजन छोड़कर इनकी रक्षा करने चलूँ तो कहीं गुरु महाराज की आज्ञा का उल्लंघन न हो जाय। वह अभी यह सोच ही रहा था कि बेटियों का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। उसने झण्डा अपने बाँस पर लपेटा, उन चारों पर टूट पड़ा। एक पल में ही उसने उन चारों को मार गिराया। उसका तो यह धंधा ही था। उसने लड़कियों से कहा– बेटा! अपना सामान ले लो और घर जाओ। अब कोई खतरा नहीं है। तुमलोग शान्ति से घर जाओ। लड़कियाँ अपना सामान लेकर घर को भाग गयीं।

उन महात्मा ने बेहोश लुटेरों को घसीटकर पशुओं के झोपड़े में बन्द कर बाहर से साँकल लगा दिया और दूर किसी वृक्ष के नीचे अपने आसन पर पुनः नाम जप में लग गये। बड़े सवेरे ही उस घर के सामने गाँववालों की भीड़ लग गयी। कोई कह रहा था– खेतों में ढूँढ़ो, हमलोगों की निगाहों से बच नहीं सकते। रातभर हमने घेरा बना रखा था, वे कहीं भागे नहीं होंगे। कोई कह रहा था– इस डकैती की पोल खोलकर ही दम लेंगे। वे कहीं से आये हों, दरोगाजी हमारे मित्र हैं। हम उनसे कहकर उन्हें ढूँढ़ निकालेंगे। कोई कह रहा था– अभी कल ही हम मंत्रीजी के साथ थे। उनसे कहकर सी.आई.डी. जाँच बैठा देंगे या एस.पी. साहब से कहकर खोजी कुत्ता मँगाये देते हैं।

कुछ लोग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ के चिल्लपौं से दूर पेड़ के नीचे बैठे हुए उन महात्मा के पास भी पहुँचे। वे बोल पड़े– यही था, इसकी आँखें तो देखो! यही था चोर। सब लोग उन महात्मा को चारो ओर से घेरा बनाकर उस घर के समीप ले गये। उन कन्याओं ने कहा– इन्हीं महात्मा ने तो हमलोगों की रक्षा की है। अब गाँवभर उन महात्मा को प्रणाम करने लगा। लोगों ने पूछा– महाराजजी! वे किधर गये? उन महात्मा ने कहा– इस झोपड़ी में देखो। चारों लस्त-पस्त वहीं पड़े थे, भागने लायक रही ही नहीं गये थे।

इधर उन महात्मा ने अपने झण्डे को देखा तो झण्डा सफेद था। वह दौड़ते हुए गुरु महाराज के पास पहुँचे और बोले– महाराज! देखिये, झण्डा सफेद हो गया। गुरु महाराज ने कहा– हूँ, बेटा! देखा, भगवान के नाम में और साधना में कितनी शक्ति है कि काला झण्डा भी सफेद हो गया। उस शिष्य ने कहा– नहीं गुरु महाराज! यह नाम के शक्तिमात्र से सफेद नहीं हुआ है। हमें भी पूरी ताकत से बाँस चलाना पड़ा तब जाकर यह झण्डा सफेद हुआ है।

यही है– **'गुरु डालि दिहलें मुँगरा हलल करे चेला।'** गुरु जो मंत्र दे देता है, **'हलल करे'**– उसमें प्रवेश करना, उसे कार्यरूप देना साधक का दायित्व होता है। गुरु महाराज कहा करते थे– हो! गुरु कुछ देता नहीं है। वह साधक को उसका गड़ा हुआ धन बता देता है। वह प्रेरणा देता है कि बेटा! वह प्रकाश दिखाई दे रहा है, पहुँच जाओ। वहाँ तक चलना साधक को ही पड़ता है।

जैसा अभी आपने इस दृष्टान्त को सुना, आप सबका झण्डा काला है, अन्तःकरण अविद्या से आवृत्त है। जब भी आपके मन-मस्तिष्क में विचारों की लहर उठेगी, अविद्या की कालिमा लेकर उठेगी। यही काले झण्डे का फहरना है। आपके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार– ये चतुष्टय अन्तःकरण दस्युओं से आक्रान्त हैं। सद्गुरु के आदेश का पालन और नाम के सतत् जप से चारों सुरक्षित हो जाते हैं, अन्तःकरण में दैवी सम्पद् का प्रवाह आ जाता है। इससे शुभ, पारदर्शी कल्याणकारी लहरें उठने लगती हैं। गुरु महाराज के आदेश का पालन होने लगा तो श्वेत झण्डा फहरने लगता है।

ऐसे ही महापुरुष के लिए इस पद में कहा गया कि **'प्यास बुझावै बिनु पानी, कोइ पण्डित ज्ञानी।'** पहले तो विषयरूपी वारि है जिसमें संसार निमग्न है। सद्गुरु की कृपा से संयम सध गया तो ब्रह्मपीयूष रूपी वारि प्राप्त होने लगता है और दर्शन-स्पर्श-स्थिति मिलने पर वह परमात्मा भी अलग नहीं रह जाता, तो वह है पूर्ण पण्डित, ज्ञानी! वह प्यास से मुक्त हो गये, अन्य की प्यास भी ऐसे महापुरुष ही मिटा सकते हैं।

सद्गुरु परमात्मा में ऐसी स्थिति का नाम है। जब तक वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता, काला झण्डा श्वेत होकर लहराने न लगे, तब तक साधक को सदैव लक्ष्य पर दृष्टि रखनी चाहिए।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

कोई अपने में देखा साँई सन्त अतीत

आपका, हमारा, मानवमात्र का आदि धर्मशास्त्र गीता है। जनसाधारण के बीच से इस गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कभी के जगद्गुरु रहे भारत में कुरीतियाँ यहाँ तक पनपीं कि एक भगवान के स्थान पर अनगिनत भगवानों की पूजा होने लगी। तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की पूजा के नाम पर भगवान हो गये तैंतीस करोड़। इतने से भी काम निकलता न देख लोगों ने गढ़ लिये भूत–भवानी और चुड़ैल। ये भी हो गये तैंतीस करोड़! जिन दिनों यह गणना हुई थी, उस समय भारत की आबादी थी तैंतीस करोड़। पहले हर आदमी का एक भगवान, फिर एक-एक के माथे पड़ गये दो भगवान। एक भूत और एक भगवान। इससे भारत के श्रद्धालु विखण्डित होते गये, जबकि सृष्टि में एक है तो भगवान। एक ही है उन्हें प्राप्त करने की विधि। मन-क्रम–वचन से जो आप संसार में लगे हैं, उसी को सब ओर से समेटकर एक भगवान में लग जायँ–

एक रात का जोर लगावै, छूट जाय भरमासा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो आछत अन्न उपासा।।
धोबिया जल बिच मरत पियासा।।

भगवान के भजन का एक ही परिणाम है– दर्शन, स्पर्श और सदा रहनेवाले अमृतमय पद में स्थिति! अमृतमय अनन्त जीवन! प्रभु का भजन करने के लिए साधन है नाम और रूप। दो-ढाई अक्षर का कोई भी छोटा-सा नाम, जो सीधे उन प्रभु का परिचायक हो, जैसे– ओम् या राम; उसका जप करें। जप तो हम आप कर लेंगे किन्तु प्रभु का रूप? भगवान का रूप तो देखा नहीं। आप ध्यान कैसे धरेंगे? मूर्ति तो पत्थर काटनेवालों ने बनायी है। कलाकार को जो रूप पसन्द आ जाता है वही उनकी कृतियों में भी उभरकर आता है। उन्होंने भी भगवान को नहीं देखा। माता पार्वती की जिज्ञासा पर

भगवान शिव ने भगवान के रूप-स्वरूप पर प्रकाश डाला जो रामचरितमानस में विस्तार से द्रष्टव्य है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है–

माता पार्वती पिछले जन्म में सती नाम से जानी जाती थीं। सती शरीर में उनसे भोलेनाथ की आज्ञा की किंचित् अवहेलना हो गयी थी। उन्होंने वह शरीर त्याग दिया। हिमाचल नरेश के यहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ। पर्वत पर जन्म लिया इसलिए उनका नाम पार्वती पड़ा। कठोर तपस्या से उन्होंने भोलेनाथ को पुनः प्राप्त किया। कैलाश शिखर के पास मानसरोवर की तलहटी में भगवान शिव और माता पार्वती के आसन लग गये। पार्वतीजी ने एक प्रश्न कर दिया–

रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई।।

(मानस, 1/107/8)

राम कौन? क्या वही राजा के लड़के जो पत्नी खो जाने पर विकल होकर रो रहे थे, जो अज्ञानियों की तरह लताओं, वृक्षों, पत्तियों से, मृगों से, पक्षियों से, भ्रमरों से उनका पता पूछ रहे थे या वह कोई अविनाशी, अजन्मा, अलख पुरुष है? इतना सुनते ही भोलेनाथ बिगड़ पड़े– पार्वती! ऐसा अनर्गल प्रश्न तुमने किया कैसे?

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच।।

(मानस, 1/114)

ऐसा प्रश्न तो अधम नर ही कर सकते हैं। धम अर्थात् धर्म! अ माने नहीं! जो धर्म से अनभिज्ञ हैं, वे कर सकते हैं। जिन्हें मोहरूपी पिशाच ने ग्रस लिया है, वे कर सकते हैं।

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।।

(मानस, 1/114/7)

जिन्हें बात करने का भूत सवार है वे भी विचार कर नहीं बोलते। वे कुछ न कुछ बड़बड़ करते ही रहते हैं। इतना ही नहीं,

जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना।।

(मानस, 1/114/8)

जिन्होंने मोहरूपी मदिरा का पान कर लिया है, उनके भी कथन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। भोलेनाथ ने देखा, इतनी डाँट-फटकार का भी इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। यह प्रश्न इनका है भी कि नहीं? तब उन्होंने ध्यान धर कर देखा। दो घड़ी पश्चात् उन्होंने ध्यान से चित्त को बाहर किया। बहुत प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने कहा–

राम कृपा ते पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं।।

(मानस, 1/112)

हे पार्वती! मैं समझता हूँ कि भगवान की कृपा से तुम्हारे अन्दर न शोक है, न मोह है, न संदेह है और न भ्रम ही है। यह प्रश्न तुम्हारा है ही नहीं, किन्तु यह समाज का प्रश्न अवश्य है। तुमने जो प्रश्न किया है, लोकहित के लिए किया है। इसलिए सुनो कि राम कौन हैं?–

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।

(मानस, 1/117/4)

परमात्मा जन्मा कब? वह जियेगा कब तक? उसका आदि और अन्त आज तक कोई नहीं पा सका, किन्तु अपने अनुमान से वेदों ने इस प्रकार गायन किया है कि भगवान कैसे हैं?

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।

(मानस, 1/117/5-6)

वह बिना पैर के ही सर्वत्र चल रहा है, बिना हाथों के सर्वत्र कार्य कर रहा है, बिना मुँह के सभी रसों का भोक्ता है, जुबान है ही नहीं फिर भी वह प्रवक्ता है, बहुत बड़ा योगी है।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

(मानस, 1/117/7-8)

वह बिना शरीर के सबका स्पर्श करता है, नाक के बिना भी सूँघ लेता है, सभी गंधों को ग्रहण करता है। लोक में जो भी घटित होता है, उसमें भी अलग विधियों से उसके कृत्य अलौकिक हैं जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सो दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान।।

(मानस, 1/118)

जिसको वेद और प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष इस प्रकार गायन करते हैं, वे हैं दशरथ के पुत्र! वही हैं भक्तों के हितैषी! वही हैं कोशलपति भगवान! कोश कहते हैं खजाने को, सम्पत्ति को। आत्मिक सम्पत्ति ही स्थिर सम्पत्ति है। वही आपका निज धन है। यह धन एक बार मिल गया तो आपका निश्चित रूप से कल्याण करके ही दम लेता है। उस कोष के मालिक हैं भगवान। वेद और प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष कहते हैं कि भगवान बिना पैरों के चलता है, बिना शरीर के स्पर्श कर लेता है, बिना आँखों के देखता है। बुलाओ फोटोग्राफर और कहो कि उसका चित्र खींचे! कलाकार उसका चित्र बनाये! बनाओ न ऐसी मूर्ति जो बिना शरीर का हो!

'जाहि धरहिं मुनि ध्यान'– किन्तु मुनि लोग ऐसे ही भगवान का ध्यान धरते हैं। देखा है नहीं, दिखाई पड़ना भी नहीं, पता नहीं ध्यान कैसे धर लेंगे? वास्तव में रामायण में ध्यान की विधि का वर्णन स्थान-स्थान पर है।

बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।

(मानस, 7/112/7)

गुरु महाराज कहा करते थे कि पाँच साल का लड़का और स्वरूप में स्थित परमहंस एक-जैसे होते हैं। महापुरुष के शरीर की आकृति मात्र बड़ी है किन्तु मनःस्थिति एक बालक-जैसी है। क्या उस पाँच वर्ष के बच्चे में आप

काम-क्रोध-लोभ-मोह या राग-द्वेष की कल्पना कर सकते हैं, ऐसा उसमें होता है? नहीं न! बस ऐसे ही महापुरुष का शरीर भर बड़ा है, वह बालक ही हैं।

रामचरितमानस का प्रसंग है। श्रीरामचन्द्रजी भाइयों सहित एक उपवन में विराजमान थे। उसी समय वहाँ सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन) पधारे–

ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।

(मानस, 7/31/4)

इन चारों ऋषियों का जन्म सृष्टि के आदि में हुआ था। ये नारद से भी श्रेष्ठ थे। बहुत काल का होने पर भी उनकी मनःस्थिति बालकों-जैसी थी। महापुरुष वही है जिसने बालकों-जैसी अवस्था प्राप्त कर ली हो। चित्तवृत्ति का निरोध ही नहीं, विलय हो गया हो। यह होते हैं सद्गुरु! इनके स्वरूप का ध्यान करें।

रामचरितमानस के आरम्भ में ही ग्रन्थकार ने बताया कि यह कृति हमारी समझ में कब आयेगी? इसे पढ़ने का तरीका क्या है? वह बताते हैं–

श्रीगुर पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।

(मानस, 1/1/5)

गुरु महाराज के चरणों के नाखून की ज्योति मणि-माणिक्य के तुल्य है। इस पद नख का स्मरण करने से हृदय में दिव्यदृष्टि का संचार हो जाता है। इस प्रकार से होता क्या है?–

दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़ें भाग उर आवइ जासू।।

(मानस, 1/1/6)

वह प्रकाश मोह से उत्पन्न अंधकार को समाप्त कर देता है। संसार में वह लोग भाग्यशाली हैं जिनके हृदय में गुरु के चरण आ गये हों। मान लें, किसी ने प्रयास किया, अभ्यास किया और सद्गुरु के चरण अपने हृदय में ले ही आया तो उससे लाभ क्या है? अपने ध्यान में गुरु का चरण उतार ही लिया तो उससे लाभ क्या है? इस पर वह कहते हैं–

उघरहिं बिमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

(मानस, 1/1/7-8)

चरण हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जायेंगे, आवागमन = जन्म-मृत्यु का दोष और दुःख मिट जायेगा। रामचरितमानस के प्रति सूझ पैदा हो जायेगी कि आखिर इसमें लिखा क्या है? **'गुपुत'**– जो लिखने में नहीं आ सका (हर बात लिखने में नहीं आती। सब कुछ लिखने के बाद तुलसीदासजी ने अन्त में आत्म-निवेदन किया है कि मैं उतना ही लिख पाया हूँ जितना अपने पुरुषार्थ से आकाश की माप करने निकली मक्खी कुछ दूर ही उड़कर गिर पड़े, इसीलिए गुप्त), **'प्रकट'**– जो लिखने में आया अथवा **'जो जेहि खानिक'**– उस परब्रह्म परमात्मा की खान में, उसके अन्तराल में जो भी रहस्य छिपे हैं, वह भी विदित हो जायेगा। कब? सद्गुरु के चरण हृदय में आ जायँ तब। मानस के मंगलाचरण में ही वह प्रार्थना करते हैं–

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

(मानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण, श्लोक 2)

मैं बोधमय, नित्य (अनित्य माने नश्वर, नित्य माने शाश्वत) बोधस्वरूप सद्गुरु की वन्दना करता हूँ। उनके आश्रित हो जाने से टेढ़ा चन्द्रमा भी सीधा, परम कल्याणकारी फल देनेवाला होता है।

'मन ससि चित्त महान।' *(मानस, 6/15)*– मन ही चन्द्रमा है। ईश्वरीय आलोक जब फूटता है तो इसी मन में प्रकट होता है, प्रसारित होता है। मन ही चन्द्रमा है किन्तु चन्द्रमा, मन बड़ा टेढ़ा है। यह राग में, द्वेष में, पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकता ही रहता है। विकृत वासनाओं में आकण्ठ डूबा हुआ यह मन सीधा और परम कल्याणकारी फल देनेवाला हो जाता है जब यह सद्गुरु के आश्रित हो जाता है। सद्गुरु ही शंकर हैं। सद्गुरु एक साँचा है जिसके अनुरूप ढलते ही जो गुरुत्व सद्गुरु में है, शिष्य में भी आ जाता

है। गुरु भी वह जो बालवत् हों। यह नहीं कि **'तुम गुरु हम चेला।'** और **'दोऊ नरक में ठेलम ठेला।'** गुरु एक क्वालिटी है, गुरु एक स्थिति है। कोई विरला लगनशील विरही साधक ही साधन कर गुरु-स्तर तक पहुँच पाता है। आजकल लोक-व्यवहार में दसियों हजार गुरु प्रतिदिन बनते-बिगड़ते रहते हैं। पण्डित के घर में किसी का जन्म हो गया तो लोग कहते हैं– का गुरु! पण्डा के घर में भी 'का गुरु'। हाँ, जन्म-जन्मान्तरों का आपका पुण्य साथ दे तो सद्गुरु छप्पर फाड़कर मिल जाते हैं। सद्गुरु की प्राप्ति अनेक जन्मों के सुकृत का परिणाम है, वैसे उनकी प्राप्ति दुर्लभ है। आवागमन से निवृत्ति दिलानेवाले भजन की जागृति के लिए ध्यान सद्गुरु का ही करना होगा–

कबीर गुरु मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु चरनन की ओर॥

इसी आशय का एक भजन है–

'कोई अपने में देखा।' क्या देखा? **'साईं सन्त अतीत'**। पूरा पद इस प्रकार है–

कोई अपने में देखा, साईं सन्त अतीत।
कोई अपने में.......
साधन करे न जोग कमावै, जटा धरै न सीस।
संयम करे नहीं व्रत साधे, न मन इन्द्रिय जीत॥
कोई अपने में.......
आगे आगे राह देत हैं, पाछे राखें नीत।
ना हाँ कहे नहीं ना बोले, है दोउन के बीच॥
कोई अपने में.......
जाग्रत स्वप्न संग मा डोले, है सुषुप्ति से मीत।
तुरिया पद में आप विराजै, कर निश्चय परतीत॥
कोई अपने में.......

कह पुरुषोत्तमदास अबै लगि, बीत गई सो बीत।
सहज प्रकाश प्रकाशक सबका, कर सोहं से प्रीत।।
कोई अपने में.......

कोई अपने हृदय में देखने लगा। किसे? 'साँई' अर्थात् मालिक को। संत अर्थात् जिसके संशयों का अन्त हो चुका हो। 'अतीत' अर्थात् जो सत्-रज-तम – इस त्रिगुणमयी प्रकृति से अतीत हो गया हो, ऐसे महापुरुष को किसी ने अपने हृदय में देखा।

प्रायः लोग कहते हैं कि गुरु महाराज का स्वरूप हृदय में नहीं आता, लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं आता। बात तो सही है। वस्तुतः साधना के आरम्भ में ही लोग सद्गुरु के स्वरूप को अपने हृदय में देखने की कामना करने लगते हैं, किन्तु ध्यान साधना का आरम्भ नहीं, परिणाम है। आश्रम से प्रकाशित एक पुस्तिका 'अनछुए प्रश्न' में ध्यान के सम्बन्ध में विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है। जैसा कि गीता अध्याय छः में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने बताया कि योगी एकान्त देश का सेवन करते हुए आशा और संग्रह का त्याग कर चित्त और इन्द्रियों को संयत करने के पश्चात् पवित्र स्थान पर स्थिर आसन से शरीर, शिर और ग्रीवा को एक सीध में रखते हुए मुझमें चित्त लगाये। अध्याय 18/51-55 में उन्होंने बताया कि साधक शब्दादिक विषयों के त्याग, एकान्त देश के सेवन, स्वल्पाहार, शरीर और इन्द्रियों के संयम के पालन, ध्यान द्वारा पराभक्ति को प्राप्त होता है। यहाँ भी ध्यान से पूर्व उन्होंने अनेक योग्यताओं का उल्लेख किया है। योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि भी यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार और धारणा के पश्चात् ही ध्यान का क्रम बताते हैं। युक्ताहार-विहार पर लोग विचार ही नहीं करते, सीधे ध्यान की बात करने लगते हैं।

सन्त सत्पुरुषों के पास जाने पर भी आपको अपने में देखना चाहिये कि आचरण में कुछ सुधार हो रहा है या नहीं? बुराइयाँ कम हो रही हैं या बढ़ रही हैं? अपने परिजनों, पास-पड़ोस, साथियों और समाज की समस्याओं को

कम करने में आपका कितना योगदान है? क्या आप आयु में बड़ों का आदर और छोटों से स्नेह करते हैं? आपके रहन-सहन, खान-पान और पहनावे में कितनी सादगी है? सुख-सुविधा के साधन जीवन-यापन के लिये अनिवार्य हैं, आवश्यक हैं, आरामदायक हैं या विलासितापूर्ण हैं? इनके संग्रह की वृत्ति है या त्याग की? आपकी जीविका परिश्रम और ईमानदारी पर आधारित है या अन्याय, छल-कपट, विश्वासघात, चोरी-बेईमानी या हत्या-तुल्य मिलावटी नकली वस्तुओं के व्यापार से उपार्जित है? क्या आप मादक वस्तुओं का सेवन करते हैं? मनोरंजन के लिये नृत्य और गायन देखने-सुनने में कितनी अभिरुचि है? सुगन्धित वस्तुओं का कितना प्रयोग करते हैं? आपकी शय्या कितनी कोमल या कठोर है? कितना समय शरीर को सुख देने और कितना समय भगवान को दे पाते हैं? अपने स्तर के अनुसार नाम, रूप, लीला और धाम की साधना में आपका समय उत्तरोत्तर बढ़ रहा है या घटता जा रहा है? इस प्रकार अपने में देखते रहने से इन्द्रियों का दमन और मन का शमन होता जायेगा। आचरण में सुधार होते ही हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम की अभिवृद्धि होगी। एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करें। भगवान यदि परम धाम हैं तो सद्गुरु उसमें प्रवेश का द्वार हैं। उनको अपने हृदय में देखने का अभ्यास करें। अभ्यास करते-करते यदि कोई उन्हें अपने हृदय में मिनट-दो मिनट देख ले गया तो साधक की साधनात्मक जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है। यह दायित्व भगवान स्वयं ले लेते हैं।

साधन करे न जोग कमावै जटा धरै न सीस।

आप जो साधना कर रहे थे, **'जोग कमावै'**– योगाभ्यास द्वारा दैवी सम्पद् अर्जित कर रहे थे, **'जटा धरै न सीस'**– वेश-भूषा, साधुता की रहनी के प्रति सतर्क थे, जटा रखते थे, वेश था; सद्गुरु का स्वरूप हृदय में आते ही साधन करने, सावधानी बरतने या वेशभूषा इत्यादि की चिन्ता करने की आपकी जिम्मेदारी समाप्त हो गयी।

संयम करे नहीं व्रत साधे, न मन इन्द्रिय जीत।

ऐसे साधक को अब संयम की चिन्ता भी नहीं रहती। साधना का एक समय होता है कि इतने बजे उठो, इतने समय तक चिन्तन में बैठो, इस समय स्नान, उस समय भोजन.....यह टाइम-टेबल भी याद नहीं रखना है। **'न मन इन्द्रिय जीत'**– न मन को जीतने का उपक्रम करो, न इन्द्रियों को जीतने में सतर्कता बरतो। यदि कोई अपने में त्रिगुणातीत संत महापुरुष का स्वरूप देख ले गया तो इन सबके लिये साधक की जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। कारण कि फिर वह मार्गदर्शन करने लगते हैं।

आगे आगे राह देत हैं, पाछे राखे नीत।

अब तक साधक अपने विवेक और बुद्धि से भजन कर रहा था, किन्तु सद्गुरु का स्वरूप हृदय में आ जाने के पश्चात् अब वह आगे का रास्ता और कोर्स बतायेंगे कि इधर चल, अब साधना ठीक है, अब क्रम सही है, अब तुम्हारी श्वास स्थिर है या अब यह विघ्न आनेवाला है, इस विघ्न को काटने का तरीका क्या है? अब वह बताने-पढ़ाने लग जाते हैं। उनके निर्देशों का पालन ही भजन है। अब तक जो भजन बौद्धिक स्तर पर हो रहा था, अब वह सद्गुरु की प्रेरणा के आधार पर होने लगता है। **'पाछे राखे नीत'**– सद्गुरु उतना ही बताते हैं जितना साधक का स्तर है। उसके कुछ आगे-पीछे का हाल बताते हैं, शेष सब गोपनीय रखते हैं। जो-जो परिस्थितियाँ आगे आयेंगी, उनसे कैसे बचाना है, साधक को उनसे कैसे निकालना है–यह नीति वह अपने पास रखते हैं, उसे नहीं बताते। इसीलिए साधक घबड़ाकर पूछ बैठता है कि प्रभो! अभी कितनी देर है? तो,

ना हाँ कहे नहीं ना बोले, है दोउन के बीच।

साधक की जिज्ञासा पर वह बताते नहीं, न इनकार ही करते हैं। दोनों के बीच से ही साधक को ले चलते हैं। एक बार एक भिक्षु ने गौतम बुद्ध से पूछा– "भन्ते! अब कितनी देर है?" बुद्ध ने कहा– "किस विषय में?" वह बोला– "आपकी तरह मैं भी तथागत हो जाऊँ, अरिहंत हो जाऊँ!" बुद्ध ने कहा– "अरे, अरे! अभी पूछा तो क्षम्य है क्योंकि अभी तुम अनजान हो,

अनभिज्ञ हो। भविष्य में ऐसा कभी मत पूछना अन्यथा तीन दिन में प्राप्ति होनी है तो तीन जन्म भी लग सकते हैं। तुम साधन ही कब कर रहे थे? तुम तो बैठे-बैठे मन में गणित लगा रहे थे। जिस मन से साधना करनी है वह तो गणित लगा रहा है। इसलिए वत्स! तुम केवल कर्म करो, प्रवृत्त रहो, बस!'' कभी-कभी साधक पूछते हैं तो भगवान हाँ भी नहीं करेंगे, बतायेंगे भी नहीं। और अधिक घबड़ाने पर पीठ ठोंक देंगे कि धैर्य धारण कर। साधक की यह अवस्था जाग्रत और स्वप्न स्तर की साधना तक ही है।

जाग्रत स्वप्न संग में डोले, है सुषुप्ति से मीत।

संसार में लोग जागते-सोते रहते ही हैं। यह जगना नहीं। जीव का आध्यात्मिक जागरण तब होता है–

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।।

(मानस, 2/92/4)

इस जीवात्मा को जगा हुआ तब समझना चाहिये जब उसे सम्पूर्ण विषय-विलास से वैराग्य हो जाय। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। *(गीता, 2/69)*

जगत्‌रूपी रात्रि में सभी प्राणी अचेत पड़े हैं, निश्चेष्ट पड़े हैं। जैसे चिकित्सक इंजेक्शन लगाकर किसी को बेहोश करता है, उसी तरह सब बेहोश पड़े हुए हैं। इनमें से संयमी पुरुष जग जाता है। गीतोक्त साधना समझकर जब वह संयम-साधना में प्रवृत्त होता है तो वह जग जाता है। इस जागृति के पश्चात् सद्‌गुरु साथ में रहने लगते हैं। आप सो सकते हैं किन्तु भगवान नहीं सोते। आत्मा कभी नहीं सोती और न यह मन ही सोता है। निद्रावस्था में भी भगवान साथ रहते हैं। भगवान जब बताना शुरू करते हैं तो जाग्रत ही नहीं, स्वप्न जगत् को भी अपना लेते हैं। वह आपको उठते-बैठते, खाते-पीते बताते हैं, भजन में बैठने पर बताते हैं और स्वप्न में भी बताते हैं। प्रभु एक पल भी नहीं सोते। स्वप्न-संसार को भी वह अपने हाथ में ले लेते हैं, यन्त्र बना लेते हैं। ऐसा योगी, ऐसा भक्त कभी स्वप्न नहीं देखता। वह जो कुछ देखता

है, भविष्य देखता है, होनी देखता है। किन्तु ज्यों ही सुषुप्ति अवस्था आयी तो 'है सुषुप्ति से मीत'।

सुप्त कहते हैं सोये हुए को। संसार में लोगों को नींद आ गयी, सो गये, हो गया सुप्त! यह शरीर की निद्रा है। अध्यात्म में सुषुप्ति का आशय है जब शरीर जागता रहे और मन सो जाय। यह भजन की अत्यन्त उन्नत अवस्था है। जब शरीर जागता हो, आँखें खुली रहें, मन में भले-बुरे उद्वेग शान्त हो जायँ, वृत्ति शान्त प्रवाहित हो, 'ओम्...ओम्...ओम्...' की ध्वनि प्रवाहित हो जाय, अन्य कोई संकल्प उठे ही न। यह है वास्तविक 'सुषुप्ति', शुभ में शयन करना। इस अवस्था में भी भगवान एक मिनट के लिये बेहोश करके कुछ दिखा देंगे, बता देंगे। वह ध्रुव अकाट्य होता है। इसका नाम है सुषुप्ति सुरा-सम्बन्धी अनुभव। जाग्रत और स्वप्न अवस्था में भगवान साथ-साथ लगे रहते हैं, सद्‌गुरु का स्वरूप साथ-साथ रहता है। सुषुप्ति अवस्था में वह मित्र हो जाते हैं, अर्जुन की तरह वह सखा हो जाते हैं। फिर वे गोपनीय कुछ भी नहीं रखते। उनसे आप जो भी जानना चाहेंगे, वह सब कुछ स्पष्ट करने लगेंगे। जो उनमें है, वह आपके समक्ष होगा। मित्र के लक्षणों पर गोस्वामी तुलसीदास जी प्रकाश डालते हैं–

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
जिन्ह कें यह मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।

(मानस, 4/6/1-3)

अपना पहाड़ के समान दुःख रजकण के समान और मित्र का रज के समान दुःख सुमेरु की तरह महसूस हो। जिन्हें ऐसी बुद्धि नहीं है, वे धूर्त हठ करके पता नहीं क्यों मित्रता करते हैं! सुषुप्ति अवस्था में भगवान मित्र बनकर साथ-साथ क्रीड़ा करते हुए चलते हैं। साधना की अत्युच्च अवस्था में जीवात्मा की चौथी अवस्था आ जाती है–

तुरिया पद में आप बिराजै, कर निश्चय परतीत।

जाग्रत और स्वप्न अवस्था में साधक से भूल होने पर वह धक्का खा जाता है, परिणाम भुगतना पड़ता है; किन्तु सुषुप्ति की मित्रवत् अवस्था में भगवान उसे गिरने ही नहीं देते। इससे भी आगे तुरीयावस्था में पहुँचते ही साधक मनरूपी तुरंग पर असवार हो जाता है। मन पर स्वामित्व मिल जाता है। मन की भागदौड़ शान्त हो जाती है। इसके पूर्व इधर-उधर भागनेवाला मन अब स्थिर हो गया, मन ने स्थायित्व ले लिया– ऐसा निश्चयपूर्वक विश्वास कर लेना चाहिए। इसके आगे तुरियातीत महापुरुष की रहनी है। अन्तिम पंक्ति में सन्त उसी ओर संकेत करते हैं–

कह पुरुषोत्तमदास अबै लगि, बीत गई सो बीत।

अब तक आपकी जो आयु, जितनी साधना व्यतीत हो गयी, उसका लेखा-जोखा करने में समय मत गँवाओ। वह समय लौटकर आयेगा भी नहीं। हाँ, भविष्य तुम्हारी मुट्ठी में है। उस स्वर्णिम भविष्य के लिए वर्तमान का सदुपयोग कर लो; क्योंकि,

सहज प्रकाश प्रकाशक सबका, कर सोहं सो प्रीत।

वह परमात्मा सहज ही प्रकाशस्वरूप है। सबके अन्दर वह प्रकाशित है। सबके अन्दर उस प्रकाश की जागृति का विधान है। वह प्रकाशित कैसे हो? इसके लिए सन्त कहते हैं कि 'सोहं' से प्रेम करो। साँस आयी तो ओम्, गयी तो ओम्। जो ओ अहं है, वही सो अहं है। ओ माने वह अविनाशी परमात्मा, अहम् माने आप स्वयं। जिसका निवास सबके हृदय में है।

सबके उर अन्तर बसहुँ जानत भाव कुभाव।

गीता-समापन से पूर्व भगवान ने अर्जुन से स्वयं पूछा कि जानते हो अर्जुन! ईश्वर कहाँ रहता है? उन्होंने स्वयं ही बताया–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ *(18/61)*

अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में वास करता है। हृदय के अन्दर! इतना समीप! तब लोग उसे देखते क्यों नहीं? लोग मायारूपी यन्त्र में

आरूढ़ होकर भ्रमवश भटकते ही रहते हैं, इसलिये नहीं जानते। ईश्वर हृदय में है तो शरण किसकी जायँ? '**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।**'– इसलिये हे भरतवंशी! उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण में जाओ, सम्पूर्ण भाव से जाओ। मान लें हमने सारी मान्यतायें तोड़ीं; भैरव बाबा, चौरा माई की पूजा छोड़ी और हृदयस्थ ईश्वर की शरण चले ही गये तो उससे लाभ क्या होगा? भगवान कहते हैं– '**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥**' *(गीता, 18/62)*– उसके कृपा-प्रसाद से तू परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे और उस धाम, उस घर को पा जाओगे जो शाश्वत है, अजर-अमर है। वहाँ तुम्हारा निवास रहेगा और रहेगा तुम्हारा अनन्त जीवन!

यही सन्त कह रहे हैं कि '**सहज प्रकाश प्रकाशक सबका**'– वह परमात्मा सहज प्रकाशस्वरूप है, ज्योतिर्मय है और न केवल स्वयं ज्योतिर्मय है, वह सबके हृदय में प्रकाशक है, प्रकाश प्रसारित करनेवाला है। उसका प्रकाश हम-आप कैसे प्राप्त करें? इसके लिए '**कर सोहं से प्रीत**'। सोऽहम्, ओऽहम्, ओम् एक ही हैं। आज की तारीख में 'सोऽहम्' शब्द बदनाम हो चुका है। 'सोऽहम्' शब्द को लेकर सम्प्रदाय चलने लगे। आज घर छोड़ा, दो-तीन महीने में सम्प्रदाय की बोली-भाषा, थ्योरी रट लिया। तब तक तो वे अपने को साधक और जीव मानते हैं और सिद्धान्त रट लिया तो कहने लगें 'सोऽहम्'– मैं वही हूँ शुद्ध-बुद्ध आत्मा! विकारों से निर्लेप!

साधुवेशधारी एक नवयुवक हमसे मिला। हमने उससे पूछा– "भजन में क्या करते हो?" उसने बताया कि उसके गुरुजी ने कहा है 'सोऽहम्' कहा करो। हमने पूछा– "उससे तुम्हारा काम चल गया?" उसने बताया– "पहले जब घर छोड़ा था, विरक्ति और नाम-जप में बड़ा मन लगता था। अब गुरु महाराज कहते हैं तू भजन ही मत कर। तू वही है परम तत्त्व परमात्मा परब्रह्म।" हमने पूछा– "तब क्या हुआ?" उसने बताया– "महाराज! इससे मेरी विकलता बढ़ गयी है। दिन काटे नहीं कट रहा है। एक दिन प्रातः चार बजे गंगा-स्नान कर मैं रामायण खोलकर पढ़ने लगा। गुरुजी ने सुन लिया। वह बोले– 'को आय रामायण पढ़त है?' उनके एक शिष्य ने बताया– 'रामदास।' गुरुजी ने

बुलाया और कहा– 'करे! मोरेउ उपदेस से तोर अज्ञान नष्ट नहीं भा! तैं ही है वह पारब्रह्म परमात्मा! फेंक दे रामायण पानी में! 'सोऽहम्'।'' इस प्रकार एक भ्रान्ति पनप गई। यदि आचरण नहीं है तो 'जटा फकीरऊ, चाल-चलन गृहस्थऊ।'

'स' माने वह परमात्मा और 'अहम्' माने आप स्वयं। यह यौगिक शब्द है। इससे भी प्राचीन है ओम्। गीता कहती है– अर्जुन! ओम् का जप कर और ध्यान मेरे स्वरूप का कर। इसका अभ्यास इतना उन्नत हो कि **'त्यजन्देहं'**– देहाध्यास का त्याग हो जाय। जिस पल अभ्यास इस ऊँचाई पर पहुँचेगा, **'ततो याति परां गतिम्'**– तत्क्षण तुम परम गति प्राप्त कर लोगे। यहाँ यह सन्त कह रहे हैं कि उन सहज प्रकाशक को प्राप्त करने के लिए **'कर सोहं से प्रीत'**– ओम् का जप करें। चलते-फिरते, उठते-बैठते, हर समय नाम याद आया करे। सुबह शाम आधा घण्टा बैठकर आप सब नाम-जप में समय अवश्य दिया करें। खुरपी चलाते, लड़का खिलाते, दुकान करते – हर परिस्थिति में नाम का स्मरण बना रहे। एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर कर नाम जपें।

यदि परमात्मा परमधाम है तो सद्गुरु भजन की जागृति, पूर्तिपर्यन्त पथ-प्रदर्शक और प्रवेश द्वार हैं। यदि तुम गीता के अनुसार नियम-संयम करते रहोगे तो भगवान ही तुम्हारा गुरु ढूँढ़कर तुम्हें दे देंगे कि देख बेटा! वह हैं तुम्हारे गुरु महाराज!

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, 7/68/7)

विशुद्ध सन्त उन्हें मिलते हैं, प्रभु जिसे करुणा कर एक निगाह देख लें। वे तब देखेंगे जब तुम उनसे प्रेम करोगे। इसके लिये नाम का जप करो।

आचरण और अभ्यास ही काम आता है। इसलिए 'कर सोहं से प्रीत'– एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर कर श्वास से नाम जप में प्रीति करें। केवल 'सोऽहमस्मि' या 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने मात्र से कुछ नहीं होगा। यदि आप नाम जपते हैं

तो भगवान सर्वत्र से सुनते हैं, सर्वत्र से देखते हैं। उनसे हम कुछ छिपा भी नहीं सकते। उनके अंक में तो यह सृष्टि चल रही है इसलिए निश्छल भाव से उनका सुमिरण करो। जब शुद्ध हृदय से नाम-जप में लौ लग जायेगी तो भगवान सद्गुरु का परिचय दे देंगे।

'नास्ति तत्त्वः गुरोः परम्'– गुरु चमड़ी का नाम नहीं है। अविनाशी तत्त्व है, वही परम गुरु है। जिसमें वह स्थित है, वही गुरु का गुरुत्व है। वहीं से वह स्वरूप प्रेरणा करने लगता है, भजन पढ़ाने लगता है। वह ज्योति-दर्शन और परम तत्त्व में स्थिति दिला देता है; किन्तु यह है प्रयोगात्मक!

मेरा गाया गायेगा सो तीन लोक भरमायेगा।
मेरा गाया गूँथेगा सो तीन लोक से छूटेगा।।

केवल कथन करनेवाला स्वयं भ्रमित है, दूसरों को भी भटकाने का कार्य करता है जबकि गुरु की कथनी को जो आचरण में ढालता है, वही तीनों लोक में सुलझा हुआ पुरुष है, इसलिए आप सब भगवान का भजन करें। भगवान परम धाम हैं तो गुरु महाराज भजन की जागृति। प्रभु के चरणों के ध्यान के स्थान पर सद्गुरु के चरणों के ध्यान का ही विधान है। लेकिन गुरु वह है जो संस्कारों से अतीत हो। केवल कहने-सुनने से परिणाम नहीं मिलता, अभ्यास करने पर सब कुछ सुलभ है।

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ।।

कबिरा कब से भया बैरागी

कबिरा कब से भया बैरागी।
तेरी हेत काहि संग लागी, कबिरा कब से भया बैरागी।
मेरी हेत धनी संग लागी, कबिरा तब से भया बैरागी।।
आसमान नहीं तब टोपी दीन्ही, धरती नहिं तब टीका।
शिव शक्ति का जनम नहिं, तबै योग हम सीखा।।
सतयुग में हम पहिनी पाँवरी, त्रेता लीन्हेउँ डंडा।
द्वापर में हम अड़बड़ बाँच्यो, कलिउ फिरेउँ हम नंगा।।
काल नहीं तहँ धुंधाकारी, नहीं गुरु नहिं चेला।
जा दिन कबिरा आसन मारा, ता दिन पुरुष अकेला।।

× × × ×

कबीर काशी (भारत) के एक महान संत हुए हैं जैसा कि एक संत को होना चाहिये। विचारकों ने संतों में से किसी को द्वैतमार्गी, किसी को अद्वैतमार्गी इत्यादि श्रेणियों में विभाजित कर रखा है, किन्तु ईश्वरपथ में कई मार्ग नहीं होते। ईश्वर एक है, उसे पाने की विधि एक है। हाँ, भजनेवालों के दृष्टिकोण दो होते हैं।

गीता के अनुसार साधना को भगवान के प्रति समर्पित होकर करना, उन पर निर्भर होकर चलना निष्काम कर्मयोग कहलाता है। यह भक्तिमार्ग है। और उसी साधना को समझकर लाभ-हानि का निर्णय स्वयं लेकर चलना, अपने बलाबल का निर्णय लेकर कर्म में प्रवृत्त होना ज्ञानमार्ग कहलाता है। क्रिया एक ही है, परिणाम भी एक ही है; केवल कर्ता के दृष्टिकोण दो हैं। स्वावलम्बी ज्ञानमार्गी कहलाता है और इष्ट पर निर्भर होकर चलनेवाला भक्तिमार्गी। कबीर भी भक्तिमार्गी थे। उन्हें निर्गुण उपासक समझने की भूल लोग करते हैं जबकि निर्गुण नाम की कोई उपासना नहीं होती। निर्गुण तो प्राप्ति के बाद संत की एक रहनी है।

सभी संत हैं राम के, सबहिं राम की आस।
सरगुन राम प्रसाद भे, निरगुन पलटू दास।।

सभी संत राम के हैं, राम से आशावान हैं किन्तु उन राम का सगुण स्वरूप, उनका प्रसाद कि वह अजर, अमर, शाश्वत, कण-कण में व्याप्त हैं, ज्योतिर्मय हैं, जिन विभूतिवाले हैं वह विभूति साधक में प्रकट हो जाय – यहाँ तक उपासना सगुण है। और जब उसे जानकर उसी में समाहित हो गया, उसी में पलट गया, गोता लग गया तो '**निरगुन पलटू दास**'– जो पलट गया, उस दास की रहनी निर्गुण है।

कबीर से भक्तों ने प्रश्न किया कि आप बैरागी कब से हो गये? किसी ने कहा कि संन्यास तो केवल ब्राह्मणों के लिए लिखा है, आप तो हिन्दू भी नहीं हैं, जुलाहे हैं, इसलिए '**कबिरा कब से भया बैरागी, तेरी हेत काहे संग लागी।**' आपने किसे हितैषी समझ लिया? किससे प्रीति जोड़ ली? घर-द्वार छोड़कर, फलता-फूलता परिवार छोड़कर आप बैरागी कब से हो गये? इससे भी बड़ी वस्तु आपको मिल गयी क्या?

उनका समाधान करते हुए कबीर ने कहा– '**मेरी हेत धनी संग लागी, कबिरा तब से भया बैरागी।**' धनी माने जो सबका मालिक है, जो कण-कण में व्याप्त है, जिनके संकेत के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, उस धनी के साथ मेरी प्रीति लग गयी, उससे लगन लग गयी तब से यह संसार फीका लगने लगा और हम विरक्त हो गये।

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।।

(मानस, 3/14/8)

गोस्वामीजी कहते हैं कि साधना में सिद्धियाँ आती ही हैं किन्तु परम बिरागी वह है जो इन सिद्धियों को और सत्-रज-तम तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग दे। गुरु महाराज की बारहमासी में है–

भोग लोक परलोक का, सबही त्यागे राग।
रहे न इनकी कामना, ताहि कहे बैराग।।

संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है और परलोक के सुख जिनके बारे में सुनने में आता है, इन सबकी कामना ही न रह जाय उसे वैराग्य कहते हैं। जब भोगों के स्थान पर एक परमात्मा में लौ लग जाय, वही वैराग्य है। कबीर भी यही कहते हैं कि **'मेरी हेत धनी संग लागी, कबिरा तब से भया बैरागी।'** वैराग्य में आपने क्या-क्या स्थितियाँ प्राप्त कीं? इस पर संत कबीर कहते हैं–

आसमान नहीं तब टोपी दीन्ही, धरती नहिं तब टीका।

आसमान कब नहीं था? यह तो सदा से ही है क्योंकि सृष्टि अनादि है। आकाश कहते हैं शून्य को। जब चित्त अभ्यास करते-करते संकल्प-विकल्प से रहित शून्य में टिक जाता है, इसका नाम है चिदाकाश। चित्त आकाशवत् हो गया, लौ लग गयी, श्वास बाँस की तरह खड़ी हो गयी, श्वास आयी तो ओम्, गयी तो ओम्। यदि राम जपते हैं तो श्वास आयी तो 'रा', गयी तो 'म'। अन्य संकल्प मन में न उठें और न वाह्य वायुमण्डल के संकल्प भीतर प्रवेश कर पायें, इसका नाम है चिदाकाश। प्रकृति से सम्बन्ध टूट जाता है तो परमात्मा ही शेष बच रहा। उस समय भगवान जिन विभूतियों से युक्त हैं, आपमें दृष्टि बनकर संचारित हो जायेंगे। उन्हें जानते ही **'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।'** अब आकाश में सुरत लगाकर टिके रहने की आवश्यकता नहीं रह गयी। उस समय पहले जो भगवान अलग थे, अब वही भगवान मन में प्रसारित हो गये, साधक उसी स्वरूप में समाहित हो गया।

कबीर से किसी ने पूछा– आप किसका भजन करते हैं?–

कोह ज्ञान है कोह ध्यान है, को है पारखबानी।
काहि लिये तुम ज्ञान कुटत हो, को है अन्तरयामी।।

कबीर ने उसी के स्वर में उत्तर दिया–

मनै ज्ञान है, मनै ध्यान है, मन है पारखबानी।
मनै लिये हम ज्ञान कूटत, मोर मनवै अन्तरयामी।।

वह मन परम चेतन का प्रतिबिम्ब पा गया, मन मिट गया, उस स्थान पर परमात्मा ही प्रसारित हो गये, भगवान एक टोपी की तरह छा गये।

'धरती नहिं तब टीका'

'धड़ धरती का एकै लेखा, जो बाहर सो भीतर देखा।' धड़ कहते हैं शरीर को, धरती कहते हैं इस पृथ्वी को। दोनों का एक ही गुणधर्म है। जो शरीर के भीतर है, वही बाहर संसार में भी है।

मन ही आपै जगत बना के ऊँच नीच तन पाया।
मन ही सरग नरक भुगतावै, मन से आया जाया।।
संतो! मन सबको भरमाया।।

मन ने सबको भरमा रखा है। यह कभी स्वर्ग भेज देता है, कभी नरक दे देता है और कदाचित् भगवान का स्पर्श कर ले तो भगवत्स्वरूप में खड़ा कर देता है। मन ही विधाता की सृष्टि में आने-जाने का कारण बनता है। **'धरती नहिं तब टीका'** धरती कब नहीं होती? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। *(गीता, 8/13)*

अर्जुन! 'ओम्' अक्षर ब्रह्म का परिचायक है। तू इसका जप कर और **'मामनुस्मरन्'**– मेरे स्वरूप का ध्यान धर। अभ्यास इतना सूक्ष्म हो गया कि **'त्यजन्देहं'**। देह के त्याग का क्या आशय है? देहाध्यास का जिस पल त्याग करेंगे, तत्क्षण परम गति को प्राप्त कर लेंगे। शरीर त्यागना देह-त्याग नहीं है। शरीर त्याग भी देंगे तो फिर शरीर मिल जायेगा। देहाध्यास को त्यागना अर्थात् अन्तिम संस्कार का विलय, सुरत का भगवान में समाहित हो जाना एक साथ घटित होता है। तो जिसमें सुरत समाहित हुई, उसे प्राप्त हो जाओगे। उस समय **'धरती नहिं तब टीका'**– उस स्वरूप में साधक अभिषिक्त हो गया, भगवत्स्वरूप में टिक गया और–

शिव शक्ति का जनम नहिं, तबै योग हम सीखा।।

जब भजन की जागृति, परवरिश तथा संहार करनेवाली प्रशक्ति शिव के द्वारा अन्तिम संस्कार का भी संहार हो गया वहाँ शिव-तत्त्व, कल्याण-तत्त्व, ज्योतिर्मय तत्त्व शेष बच रहता है वह उसी में समाहित हो गया। योग अब पूर्ण है। अब न संस्कार बनेंगे, न संहार होगा, न संहार करनेवाली प्रक्रिया जागृत होगी। इसी प्रकार शिव शक्ति के जन्म की आवश्यकता नहीं रह जाती, **'तबै योग हम सीखा। कबिरा तब से भया बैरागी॥'**

कबीर का जन्म अभी छः-सात सौ वर्ष पहले हुआ था; किन्तु वह कहते हैं कि–

सतयुग में हम पहिनी पाँवरी, त्रेता लीन्हेउँ डंडा।

साधना के चार क्रमोन्नत सोपान हैं– कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग। संसार में ज्योतिषाचार्यों ने इसकी लम्बी-चौड़ी गणना दी है कि चार लाख वर्ष का कलियुग है, आठ-नौ लाख वर्ष का द्वापर है, लगभग बारह लाख वर्ष का त्रेता है और सत्रह लाख वर्ष के लगभग सतयुग है। इतना न हमें जीना है और न उन ज्योतिषाचार्यों को; तो इस अटकल का क्या औचित्य? यह तो दन्तकथा हो गयी। महापुरुषों ने इन बिना सिर-पैर की बातों पर ध्यान नहीं दिया। युग का अर्थ होता है दो। स्वामी भगवान और सेवक, ये दोनों जिस दिन आमने-सामने हो जाते हैं, उसी दिन से युगधर्म की शुरुआत हो जाती है। युगधर्म कभी था, आज नहीं–ऐसी कोई बात नहीं। युगधर्म का उतार-चढ़ाव मनुष्य के हृदय में होता है।

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

(मानस, 7/103/6)

विवेकी, प्रत्यक्षदर्शी महापुरुषों ने युगधर्म के उतार-चढ़ाव को मन के अन्तराल में जाना है इसलिए वे अधर्म का त्याग कर धर्म में अनुरक्त हो जाते हैं। मन के अन्तराल में इन युगधर्मों का उतार-चढ़ाव किस आधार पर होता है? इस पर कहते हैं–

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे॥

युगधर्म सबके हृदय में निरन्तर होते रहते हैं, राममाया की प्रेरणा से होते हैं। माया के दो रूप हैं। एक तो अविद्या माया है–

एक दुष्ट अतिशय दुःखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।।

(मानस, 3/14/5)

यह अविद्या अतिशय दुष्ट है जिसके वशीभूत होकर यह जीव भवकूप में पड़ा है। दूसरी ओर विद्या माया है– **'एक रचइ जग गुन बस जाके।'** अर्थात् एक रचना करती है। कैसी रचना? गुणों को नियन्त्रित करती है। जगत् की उत्पत्ति के कारण त्रिगुण उसके बस में हैं लेकिन वह विद्यामाया प्रभु प्रेरित है, **'नहिं निज बल ताकें'**– स्वयं में उसका अपना बल कुछ भी नहीं है। उस विद्या के बल से **'नित जुग धर्म होहिं सब केरे।'**

अब कैसे ज्ञात हो कि कब कौन-सा युग कार्यरत है? इसे बताते हैं–

सुद्ध सत्त्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।

(मानस, 7/103/2)

शुद्ध सत्त्वगुण कार्य करता हो तो यह सतयुग का प्रभाव है। उस समय मन में प्रसन्नता होगी। उस समय भजन की क्षमता क्या होगी?

कृत जुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।

(मानस, 7/102/1)

उस समय सब योगी और विज्ञानी होते हैं, सहज ध्यान धर के वह पार हो जाते हैं। इसी प्रकार –

सत्त्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।

(मानस, 7/103/3)

हर प्रकार से सुख– यह त्रेतायुगीन पुरुष के लक्षण हैं। उस समय साधना का स्तर कैसा होता है?–

त्रेतां बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।।

(मानस, 7/102/2)

विविध यज्ञ! आज शास्त्र भूल जाने से लोग जग्य का नाम सुनते ही वेदी बनाकर 'स्वाहा-स्वाहा' बोलने की ओर चले जाते हैं, किन्तु गीता के अनुसार योगविधि यज्ञ है। श्वास का प्रश्वास में हवन करना यज्ञ है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ *(गीता, 4/29)*

भगवान ने वहाँ 13-14 विधियों से यज्ञ का वर्णन किया और यह भी बताया कि भौतिक द्रव्यों से सिद्ध होनेवाले यज्ञ यज्ञ तो हैं किन्तु अत्यल्प हैं। आरम्भिक कक्षाओं के लिए वे अनिवार्य हैं लेकिन अति अल्प हैं। वास्तविक यज्ञ मन और इन्द्रियों के संयम से सम्पन्न होनेवाले हैं। यज्ञ के परिणाम में मन का निरोध और विलय होता है। वाह्य यज्ञों से तो मन का निरोध होते नहीं दिखता। गीता (4/31) में है कि यज्ञ के पूर्तिकाल में यज्ञ जो अवशेष छोड़ता है, उस ज्ञानामृत का पान करनेवाला योगी सनातन ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बाहर यज्ञ से जो बचता है, घी या आटा, यह अवशेष नहीं है। अवशेष है ज्ञानामृत। सृष्टि मरणधर्मा है। एक आत्मा ही अमृत तत्त्व है। यज्ञ उस अमृत को प्रदान करता है, सनातन ब्रह्म में स्थिति दिलाता है। उससे निम्न स्तर पर है द्वापर–

बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥
(मानस, 7/103/4)

साधना के समय कभी हर्ष और संस्कारों के दबाव में साधक कभी भयभीत होता है। ऐसी परिस्थिति में वह भजन कैसे करे? तो–

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
(मानस, 7/102/3)

इसी प्रकार कलियुग में–

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥
(मानस, 7/103/5)

जब चारो ओर बैर-विरोध ही है तो हमारा कल्याण कैसे होगा? ऐसी परिस्थिति में '**कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।**' *(मानस, 7/102/4)*– प्रभु का गुणगान करें।

कबीर कहते हैं कि जब सात्त्विक गुण मात्र शेष था, तब जहाँ भी हम कदम रखते थे भगवान अपना हाथ बढ़ा देते थे। '**जहाँ भगत मेरो पग धरे, तहाँ धरूँ मैं हाथ। पाछे लागा सदा रहूँ, कबहुँ न छोड़ूँ साथ।।**' कहीं गड्ढे में पाँव जा रहा है तो भगवान सँभाल लेंगे, काँटों पर पाँव रखेंगे तो भगवान हाथ बढ़ा देंगे। भगवान अपनी पाँवरी रख देते हैं। कुमार्ग में आप जा ही नहीं सकते। विभीषण ने कहा–

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।

पहले हम उनका चरण-पूजन करते हैं, फिर भगवान करुणार्द्र हो जाते हैं, अपनी पादुका ही भक्तों को पहना देते हैं। भगवान सम्हाल-सम्हाल कर पाँव रखवाने लगते हैं। गुरु महाराज कहते थे कि हम पतित होना चाहें तो भगवान मोके होखै ना दिहैं। हो, कहाँ जाओगे! भगवान पीछे डण्डा लेके खड़े हैं। भगवान अपनी पादुका दे देते हैं। और जब साधना त्रेतायुगीन हुई तो डण्डा मिल गया।

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहीं सुनिअ अस रामचंद्र के राज।।

दण्ड यतियों की पहचान है कि किसी का दण्ड-निवारण कर दें, कष्ट-निवारण कर दें। कोई उद्दण्ड है तो उसे दण्ड भी दें। कोई गुरु महाराज के यहाँ निवेदन करता कि उसे बुखार आ रहा है, वे पूछते कब से बुखार आ रहा है? वह कहता– तीन महीने से। महाराज कहते– ले खा विभूति! वह कहता– महाराज! कल पारी है। महाराज कहते– ठीक है, पारी बिता कर आना। वह उसके बाद आता और कहता कि बुखार तो नहीं आया महाराज। कोई उच्छृंखल आता, महाराजजी उसे डाँट देते तो उसके सब करम हो जाते। इस प्रकार महापुरुषों में दण्ड-निवारण और दण्ड देने दोनों की क्षमता आ जाती है।

द्वापर में हम अड़बड़ बाँच्यो.....

द्वापर में मन में दुविधा बनी है। कभी भजन में मन लग गया तो यह मन ठीक पढ़ने लगता है, कभी मन नहीं लगा, पुराने संस्कारों की रील में कुछ गड़गड़ी आ गयी तो उथल-पुथल मच जाती है। कभी सेवा में मन लगा, कभी नहीं लगा– यही है ठीक से पढ़ना, न पढ़ना।

कलिउ फिरेउँ हम नंगा।

सेवा के शुरुआत में जब केवल तामसी गुण हैं, उसके पास न संयम है न साधना; कुछ भी नहीं है। हाँ, याद सब है तो अभी साधना नंगी है। **'कबिरा तब से भया बैरागी।'**

काल नहीं तहँ धुंधाकारी.....

धुंध अर्थात् द्वन्द्व पैदा करने-करानेवाले काल की गति साधना की सम्पूर्णता में नहीं रह जाती। उस समय **'काल न खाय कलप नहीं व्यापै, देह जरा नहीं छीजै।'** एक अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं– **'कह कबीर निज घर चलो, जहाँ काल न जाई।'** मानस में है, गोस्वामी तुलसीदासजी ने गरुड़ के माध्यम से प्रश्न किया– **'तुम्हहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन।'**– भगवन्! यह आपके योग का बल है या ज्ञान का प्रभाव, काल आपको क्यों नहीं व्यापता? वहीं कबीर कहते हैं कि **'काल नहीं तहँ धुंधाकारी'**– द्वन्द्व पैदा करनेवाला काल वहाँ नहीं है। **'नहीं गुरु नहिं चेला।'**– उस समय शिष्य भी पूर्ण। **'गुरु न चेला पुरुष अकेला।'** गुरुजी चेले को किससे बचायेंगे? और अन्त में कहते हैं–

जा दिन कबिरा आसन मारा, ता दिन पुरुष अकेला॥

आसन से प्रायः लोग आशय लेते हैं किसी मुद्रा में बैठ जाना। किन्तु यह आसन नहीं है; क्योंकि –

आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यों कोल्हू के बैल को घर ही कोस पचास॥

आसन मारने से क्या होगा यदि मन की आशा समाप्त नहीं हुई। कोल्हू का बैल दस मीटर की कोठरी में चक्कर लगाता रहता है, बाहर देखता ही नहीं। दिनभर में पचासों कोस की यात्रा हो जाती है। थक-हारकर वह बैठ जाता है। इसका नाम आसन नहीं है; क्योंकि मन तो हवा से बातें कर रहा है। भगवत्-पथ में मन के स्थिरीकरण का नाम आसन है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं– '**स्थिरसुखमासनम्।**' *(योगदर्शन, 2/46)*– स्थिर और सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। लोग बैठे ही तो रहते हैं किन्तु मन उड़ रहा होता है। यह आसन नहीं है। महर्षि कहते हैं– '**प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।**' *(योगदर्शन, 2/47)*– यम-नियम में, शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय में, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह में जो प्रयत्न चल रहा है, हमारे इस प्रयत्न में शिथिलता आ जाय, यह सहज होने लगे और एक परमात्मा में मन लगाने से आसन सधता है। यदि बाहर बैठने का नाम आसन होता तो परमात्मा में मन लगाने की क्या आवश्यकता थी? अच्छी बिक्री होने पर बहुत से व्यापारी दिन-दिनभर बैठे रहते हैं, हिलते-डुलते भी नहीं–यह आसन नहीं है। वास्तव में मन का स्थिरीकरण ही आसन है। जहाँ आसन सधा, '**तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।**' *(योगदर्शन, 2/49)*– आसन के सधते ही श्वास-प्रश्वास की गति का रुक जाना अर्थात् न भीतर से कोई उद्वेग उठे, न वाह्य वायुमंडल के कोई संकल्प मन में प्रवेश कर पायें – इसका नाम है प्राणायाम। प्राणों की गति पर विराम लग गया। आपने किया था आसन, हो गया प्राणायाम। किया था यम-नियम का चिन्तन और सध गया आसन। यह क्रमिक है। प्राणायाम के सधते ही उसके और ज्योतिस्वरूप परमात्मा के बीच जो आवरण था वह शान्त हो जाता है। '**जबसे कबिरा आसन मारा, तब से पुरुष अकेला।**' आसन के सधते ही परम पुरुष परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और उसमें स्थिति मिल गयी, '**कबिरा तब से भया बैरागी।**'

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे लागा हरि फिरें, कहत कबीर कबीर।।

एक सेठजी थे। उनका नियम था कि प्रतिदिन पूरी कथा सुनकर ही उठते थे। ऐसा नहीं कि कथा के प्रति उनमें भाव था, बल्कि सारा गाँव वहीं एकत्र होता था और सेठ चाहते थे कि गाँववाले उनका चेहरा देख लें कि वे कितने धर्मात्मा हैं। इससे उनके व्यापार पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। एक दिन गाँव के एक समृद्ध रईस उनकी दुकान पर आ गये। उनके यहाँ कन्या का विवाह था। उन्हें लाख-डेढ़ लाख का माल लेना था। सेठानी ने अपने छोटे पुत्र से सन्देश भेजा कि ठाकुर साहब लाख-दो लाख का सामान लेने आये हैं। सेठ ने कहा कि अपनी माताजी से कहो कि उन्हें जलपान करायें, चाय पिलायें, पान-सुपारी खिलावें, मधुर-मधुर बोलें। कथा पूरी करके ही हमें आना है, तब तक उन्हें रोक रखें।

कुछ देर पश्चात् बालक पुनः आ गया, बोला– वह कह रहे हैं कि बहुत सारे काम हैं, हमें देर हो रही है। हम फिर आ जायेंगे। सेठ ने कहा– कैसा बनिया का लड़का है! कुछ उपाय कर। उस दिन कथा कुछ लम्बी ही रही। लड़के ने भी सुना–

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। *(गीता, 5/18)*

भगवान हर जीव में होते हैं। गाय में भी, कुत्ते में भी....सबमें हैं। कथा सम्पन्न होने पर सेठजी दौड़ते हुए दुकान पर आये, देखा– एक गाय गल्ले में खा रही है। लड़के ने भी देखा था किन्तु उसने सोचा कि जब सबमें भगवान हैं तो दुकान भगवान की है, भगवान ही खा रहे हैं। वह शान्त बैठा रहा। सेठजी ने देखा तो बिगड़े– कैसा मूर्ख लड़का है! यह सब बर्बाद कर देगा। मेरे बाद तुझे खाने तक को नहीं मिलेगा। उन्होंने उठाई छड़ी और दो छड़ी सटाक-सटाक गाय को लगा दिया।

गाय तो भागी, लड़का चीख मारकर गिर पड़ा। बेहोश हो गया। मुनीम लोग दौड़ पड़े। बच्चे की माँ भी आ गयी। कपड़े उतारकर देखा तो बच्चे की पीठ पर छड़ी के निशान पड़े हुए थे। लड़के को भी तब तक होश आ

गया था। सेठ ने पूछा कि मैंने तो गाय को मारा था, ये तुम्हें कैसे लग गयी? उसने कहा– पिताजी! पण्डितजी कह रहे थे कि गाय में भगवान, कुत्ते में भगवान, तो मैं गाय में भगवान को देख रहा था। आपने उसे मारा, वह छड़ी हमको ही लग गयी। सेठ ने कहा– तू कैसा मूर्ख है! मुझे कथा सुनते 20 साल हो गये लेकिन जो कथा हम सुनते हैं, वहीं झाड़कर चले आते हैं; तू कथा को गाँठ बाँधकर चला आया। बनिया का कैसा लड़का है तू! लड़के ने कहा– पिताजी! आप कथा को इसी तरह से छोड़कर आते रहें, हम तो चले। लड़का साधु हो गया।

न जाने किस घर में किसी संस्कारी का जन्म हो जाय, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा और समर्पण के साथ नाम का स्मरण करते रहना चाहिए; क्योंकि वैराग्य का आरम्भ यहीं से है।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

बिरहिनी मंदिर दियना बार

(प्रस्तुत पद के रचयिता यारी साहब का मूल नाम यार मुहम्मद था। यह बावरी साहिबा के शिष्य बीरू साहब के शिष्य थे। इनका जीवनकाल सन् 1668 से 1723 ई0 के बीच बताया जाता है। इनकी समाधि दिल्ली शहर में है। यारी साहब के एक शिष्य बूला साहब ने इनके मत की एक शाखा भुरकुड़ा, जिला– गाजीपुर, उत्तर प्रदेश में स्थापित की जो आज तक चल रही है।)

रामचरितमानस में एक आध्यात्मिक रूपक है। रावण के आतंक से पृथ्वी घबड़ा गयी। गो का रूप धारण कर वह देवताओं के पास गयी। देवता भी रावण से त्रस्त थे–

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।

(मानस, 5/19/7)

वे रावण की निगाह देखते रहते थे कि उनके उठने-बैठने, चलने-देखने या सेवा करने में कहीं अशिष्टता न हो जाय और यह दुष्ट बेगारी बढ़ा दे। उन्होंने कहा– माते! दुःखी तो हम भी हैं, हम तुम्हारे साथ हैं। वे गये मुनियों के पास। उन्होंने बताया कि रावण तो उनसे भी कर के रूप में रक्त वसूल करता है। आजकल चिकित्सा में एक का खून दूसरे को चढ़ाते हैं। रावण के समय में यह आविष्कार जोरों पर था। आजकल बोतल-दो बोतल खून चढ़ाते हैं, रावण के निशाचर घड़ा-दो घड़ा रक्त पी जाते थे। महात्माओं का रक्त उन्हें अधिक प्रिय था इसलिए वे उन्हें मारते नहीं थे। मर ही जायेंगे तब तो कारखाना ही समाप्त हो जायेगा। जब महात्मा कम पड़ने लगे तो वह ब्राह्मणों का रक्त लेने लगा।

तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।।

(मानस, 1/182 छन्द)

वेद-पुराण तो पंडितजी ही कहते थे इसलिए उनके भी पीछे वह पड़ा था। सब मिलकर ब्रह्माजी के पास गये–

सुर मुनि गन्धर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई।।

(मानस, 1/183 छन्द)

ब्रह्मा ने कहा- मेरा भी कोई वश नहीं है। जिसकी तुम दासी हो, वह अविनाशी है। हमारे, तुम्हारे, सबके सहायक वे ही हैं। उन प्रभु की शरण जाओ। ब्रह्मा ने इतना ही बताया। शरण जाने की विधि क्या है? - यह ब्रह्मा भी नहीं जानते थे। सभी लगे अनुमान लगाने-

पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।

(मानस, 1/184/2)

किसी ने कहा- भगवान बैकुण्ठ में रहते हैं, बैकुण्ठ चला जाय। दूसरे ने कहा- नहीं, वह तो क्षीरसागर में रहते हैं।

तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।।

शंकरजी ने कहा- हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था। वक्ताओं की भीड़ में अवसर ही नहीं मिल रहा था। सुझाव देनेवालों की लाइन लग गयी। निर्णय कुछ भी नहीं हो सका। जहाँ अवसर मिला, उन्होंने बताया-

हरि ब्यापकु सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।

(मानस, 1/184/5)

भगवान सर्वत्र विद्यमान हैं। वह यहाँ भी हैं। उन्हें खोज निकालने की विधि है प्रेम! प्रेम से भगवान प्रकट हो जाते हैं। मैंने यह पढ़ा नहीं, सुना नहीं, जाना है; इस सत्य का साक्षात् किया है। वह चराचर जगत् में हैं-

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।
अग जग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

(मानस, 1/184/6-7)

भगवान कहाँ नहीं हैं? प्रेमपूर्वक श्रद्धापूर्वक उनका सुमिरण करो। सबने स्तुति की, तत्काल सुनवाई हो गयी। आकाशवाणी हुई–

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।

(मानस, 1/186/1)

डरो मत! तुम्हारे हित के लिए मैं नर-वेष धारण करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ।

इस प्रकार भगवान को ढूँढ़ने की विधि केवल प्रेम है और अनन्तकाल से यह विधि विद्यमान है। माता मीरा ने इसी विधि का अवलम्बन लिया–

हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जानै कोय।

मानस में है–

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।

(मानस, 3/15/11)

प्रेम का स्तर जब उन्नत हो जाता है तो वह विरह-वेदना में परिवर्तित हो जाता है। इसी का नाम है इष्टोन्मुखी लगन।

भजन शरीर नहीं करता। **'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' (मानस, 7/42/8)**– शरीर तो एक धाम है, मकान है। मकान भजन करता है क्या? हाँ, यह साधन-धाम अवश्य है। कौन-सा साधन? जो मोक्ष प्रदान कर दे! मोक्ष के लिये भगवान के प्रति प्रेम, श्रद्धा, लगन, इन्द्रियों का दमन, मन का शमन, मन की टेक इत्यादि जो भी चाहिये, भगवान ने सब इस तन में सजाकर, सँवारकर दिया है। आप स्त्री हों, पुरुष हों या नपुंसक ही क्यों न हों, भजन जब भी किसी से पार लगा तो इष्टोन्मुखी लगन जागृत हो गयी, लौ रूपी लड़की! यही भजन कराती है। जिसमें यह विरह-वेदना जागृत है, ऐसे साधकों को यह सन्त कहते हैं–

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

बिन बाती बिन तेल जुगुत सों, बिन दीपक उजियार।

प्रान प्रिया मेरे गृह आये, रचि-पचि सेज सँवार।।

सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निरगुन निरकार।
गावहु री मिलि आनँद-मंगल, 'यारी' मिलके यार।।

जब विरह-वेदना जग ही गयी तो मंदिर में दीप जलायें। दीपावली के अवसर पर गृहस्थ लोग मंदिरों में घी के दीप जलाकर लक्ष्मीनारायण की पूजा करते हैं। एक मन्दिर में लगभग पचासों दीपक जल रहे थे। भाविक भक्त शान्त होकर भजन कर रहे थे। पुजारीजी की दृष्टि घी की ओर गयी तो उन्होंने सोचा– सब दीपकों में 5-7 किलो घी तो होगा ही, अकारण ही जल जायेगा। यदि इसे बचा लें तो दाल में डालने के लिए महीने भर के लिए पर्याप्त होगा। पुजारीजी लालच में पड़कर बोले– भक्तजनो! अब आप लोग घर जायँ। घर में बैठकर आप सभी भजन, सुमिरण करें। हम भी एकान्त में यहाँ मंत्र सिद्ध करेंगे।

जनता तो भोली-भाली और श्रद्धालु होती ही है। सबने उन पुजारीजी को प्रणाम किया और घर चले गये। पुजारीजी दीपक बुझाकर घी एक कनस्तर में भरने लगे। एक सेविका बाहर झाड़ू लगा रही थी। उसकी दृष्टि पड़ी तो उसने शोर मचाया– 'पण्डितं घृतं चोरं।' पण्डित जी बिगड़े– 'चुप रह दासी। मर कर शोरं। अर्द्धं तोरं, अर्द्धं मोरम्।' आप सब जानते ही हैं कि भारत की गुलामी का एक बड़ा कारण मन्दिरों में संग्रहित अपार सम्पत्ति का आकर्षण ही था। सोमनाथ का मन्दिर लूटकर लुटेरे साढ़े सात सौ ऊँट अशरफी (सोने के सिक्के) ले गये थे।

स्मारक या मन्दिर गलत नहीं हैं। इनकी स्थापना का उद्देश्य जन-कल्याण ही होता है। ये परमात्मा की पाठशालायें हैं। ये पूजाघर हैं, नामघर हैं, लेकिन कालान्तर में जब इन स्थलियों पर भोजन-पानी ताव से मिलने लगा तो पुजारियों को लालच ने घेर लिया, थोड़ा घी बचाने में लग गये, कुरीतियाँ पनप गयीं, लेकिन जिस मन्दिर में हमें दीपक जलाना है वह मन्दिर है हृदय। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। *(गीता, 14/17)*

अर्जुन! वह ईश्वर ज्योतियों का भी ज्योति, अंधकार से अत्यन्त परे, '**ज्ञानं**'– परमात्मा के साक्षात् सहित जानकारी ज्ञान के द्वारा सुलभ है। वह रहता कहाँ है? तो '**हृदि सर्वस्य विष्ठितम्**'– सबके हृदय में समाविष्ट होकर सदा निवास करता है। हृदय में बैठकर वह करता क्या है?–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। *(गीता, 15/15)*

अर्जुन! मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ। बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता मुझसे होती है अर्थात् साधना जागृत होने पर भगवान ही बुद्धि देते हैं, दर्शन देते हैं और विकारों को काटने की क्षमता भी देते हैं। सभी वेदों से अर्थात् अनुभवी संचार की सभी विद्याओं से मैं ही जानने में आता हूँ, मैं ही एक जाननेयोग्य हूँ और '**वेदान्तकृत्**'– जानकारी के अन्त में वेदान्त का कर्ता भी मैं ही हूँ। वेद या वेदान्त से यहाँ इन नामों से प्रचलित पुस्तकों का आशय नहीं है, वेदान्त तो साधना का परिणाम है।

अठारहवें अध्याय में भगवान बताते हैं–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। *(गीता, 18/61)*

अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। हृदय के अन्दर! इतना समीप, तब लोग उसे देखते क्यों नहीं? लोग मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर भ्रमवश भटकते ही रहते हैं, इसलिये नहीं देख पाते। जब ईश्वर हृदय में है तो हम शरण किसकी जायँ? अगले ही श्लोक में भगवान आदेश देते हैं– '**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।**'– अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की ही शरण जाओ। सम्पूर्ण भावों से जाओ। अभी तो हमारा कुछ भाव पशुपतिनाथ में, कुछ हरसू ब्रह्म में, कुछ गड़बड़ा देवी,

कुछ पिशाचमोचन, डीह बाबा और चौरा माई में है। हमारी श्रद्धा तो बिखर गयी। ईश्वर के लिए तो हमारे मन की श्रद्धा दस प्रतिशत भी नहीं बची तो कल्याण कैसे होगा? यहाँ भगवान कहते हैं– सम्पूर्ण भाव से, मन-कर्म-वचन से उस ईश्वर की शरण जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यतायें तोड़ दीं, ईश्वर की शरण सम्पूर्ण भाव से चले ही गये तो उससे लाभ क्या होगा? भगवान कहते हैं– **'तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥'** *(गीता, 18/62)*– ईश्वर के कृपा-प्रसाद से तुम परम शान्ति प्राप्त कर लोगे और उस निवास-स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, अजर-अमर है। तुम रहोगे, तुम्हारा अनन्त जीवन, सदा रहनेवाला घर रहेगा। हर साल उसमें मरम्मत करो, चूना पोतो, इसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इस प्रकार गीता आपको अपने सहज स्वरूप में स्थिति दिलाती है, लेकिन इसके लिये जिस मन्दिर में हमें-आपको पूजा करनी है, वह मन्दिर है हृदय। जब कभी किसी ने परमात्मा को पाया है तो हृदय में ही पाया है। वाह्य मन्दिर आरम्भिक प्रार्थना-स्थली है। वहाँ से हमारी प्रार्थना आरम्भ होती है लेकिन हृदय-स्थल में जब साधना जागृत हो गयी, विरह जग गया, वेदना जग गयी, तो–

बिरहिनी मन्दिर दियना बार।

हृदय ही मन्दिर है। इसी में दीपक जलाना है। हृदय में दीपक जलाने का उपक्रम करने पर नस-नाड़ियाँ जल सकती हैं। यह सन्त कैसा दीपक जलाने को कहते हैं?–

बिन बाती बिन तेल जुगुत सों, बिन दीपक उजियार॥

आरम्भ में दीपक जलाना पड़ता है। वह दीपक है नाम का। **'नाम का दीप जला ले अँधेरा पल भर में मिट जाय।'** नाम का अभ्यास क्रमशः मणि-दीप का रूप ले लेता है जिसमें बाती तेल और दीप की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह दीपक योग-युक्ति से प्रकाशित होता है–

जोग जुगुत जाना नहीं, कपड़ा रँगा गेरुआ बना।
जाना न निज दरवेश को, जोगी हुआ तो क्या हुआ?

योग एक युक्ति है जिसकी जागृति सद्गुरु से मिलती है। इस दीपक की चर्चा गोस्वामी तुलसीदासजी भी करते हैं–

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु जौं चाहसि उजिआर।।

राम-नामरूपी मणि-दीप को जिह्वा की देहरी पर रख दें तो भीतर अन्तःकरण में तथा वाह्य वायुमण्डल में सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। न भीतर से भले-बुरे संकल्प उठेंगे और न वायुमण्डल में फैले दुर्विचार ही आपमें प्रवेश कर पायेंगे; यदि राम-नामरूपी मणि-दीप में लव लग गयी तो मणि-दीप थोड़ा और सूक्ष्म होने पर भक्ति-मणि में बदल जाता है–

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।।
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई।।

(मानस, 7/119/2-5)

भक्तिरूपी दीपक के परम प्रकाश में आवागमन का मूल अविद्यारूपी अंधकार तिरोहित हो जाता है।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें।।

(मानस, 7/119/9)

भक्तिरूपी मणि जिसके हृदय में बसती है, लेशमात्र भी दुःख उसके लिए होता ही नहीं। अस्तु नाम-दीप, मणि-दीप और भक्ति-मणि में न तेल लगता है, न दिया और न बाती ही; जैसा यह सन्त कहते हैं– '**बिन बाती बिन तेल जुगत सों, बिन दीपक उजियार।**' यह जागृति सन्तों से मिलती है, सद्गुरु से मिलती है। जहाँ भक्तिरूपी मणि-दीप प्रज्ज्वलित हुआ, उस प्रकाश में भगवान दिखायी पड़ जायेंगे।

प्राण पिया मोरे गृह आये रचि पचि सेज सँवार।

प्राणों के आधार, जीवन के आधार और जिन प्रभु को प्राप्त कर लेने के बाद इस जीव की प्यास सदा के लिए मिट जाती है, उन्हें पिया कहकर सम्बोधित किया गया, जिनकी प्राप्ति के पश्चात् फिर किसी प्रकार की तृष्णा नहीं रह जाती क्योंकि भगवान के आगे कोई सत्ता है ही नहीं तो चाह किसकी करेंगे। साथ ही दुनिया की सभी आशायें, तृष्णायें विलुप्त हो जायेंगी। क्योंकि,

जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

(मानस, 1/111/2)

उन्हें जानने के पश्चात् जगत् खो गया। जगत् है ही नहीं तो चाह किसकी करेंगे? वह प्रभु जब हृदय में आ गये, तो '**रचि पचि सेज सँवार।**'– अभ्यास में शिथिलता न आने पाये। भगवान को बैठने की शय्या रच डालें, सजा डालें और सजाने में 'पचे'–परिश्रम करें अर्थात् सतत् अभ्यास में लग जायँ, अभ्यास बढ़ा लें।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा– अर्जुन! माना कि मन वायु से भी तेज चलनेवाला है, किन्तु '**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।**' ***(गीता, 6/35)***– वैराग्य और अभ्यास के द्वारा यह भली प्रकार स्थिर हो जाता है। राग का अर्थ है आसक्ति, लगाव। वैराग्य का अर्थ है देखी-सुनी वस्तुओं में राग का त्याग। वैराग्य के द्वारा आनेवाले आघातों को रोका जाता है तथा अभ्यास के द्वारा अन्तःकरण में संस्कारों की परत को काटा जाता है। यही उपाय है मन को रोकने का। सतत् अभ्यास के लिए–

जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय।
सुरत डोर लागी रहे, तार टूट ना जाय॥

आप जब तक जगें, सुमिरन करें। सोने लगें तो लव लगाकर निद्रालाभ करें। इस प्रकार आठों पहर अर्थात् दिन-रात चौबीसों घण्टे भजन का तार टूटने न पाये। यही है पचना! अभ्यास को बढ़ाते जायँ। भगवान के लिए जिस शय्या को सजाना है, उसका स्वरूप क्या है?–

सुखमन सेज परम तत रहिया पिया निरगुन निराकार॥

सुखमन नामजप की उन्नत अवस्था की उपलब्धि है। एक ही नाम को चार श्रेणियों से जपा जाता है– बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। 'राम-राम' या 'ओम्-ओम्' की ध्वनि हम स्वयं सुनें और दूसरों को भी सुनाई पड़े, ध्वनि व्यक्त होती रहे इसलिए इसे बैखरी कहते हैं। शुरुआत यहीं से है। यह नितान्त आवश्यक है। जब शिशु और प्राथमिक कक्षाओं को उत्तीर्ण ही नहीं किया तो उन्नत कक्षाओं में प्रवेश कैसे मिलेगा? बच्चे अभी संकीर्तन कर रहे थे, यह भी बैखरी वाणी का जप है। गुणानुवाद, कथा इत्यादि बैखरी जप के ही अन्तर्गत हैं।

बैखरी जपते-जपते जब मन जप में लगने लगे, जप में मन के टिकने की क्षमता आ जाय तो यही बैखरी का जप मध्यमा में प्रवेश पा जाता है। मध्यम अर्थात् धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता! ध्वनि क्षीण होने लगती है। यह उच्चारण कण्ठ से होता है। जिह्वा की किंचित् सहायता लेते हुए उच्चारण इस प्रकार करें कि समीप में कोई बैठा हो तो उसे सुनायी न दे किन्तु आपका उच्चारण चलता रहे और आप उसे सुनें भी।

मध्यमा वाणी में मन की थोड़ी स्थिरता आते ही पश्यन्ती के जप में प्रवेश मिल जाता है। पश्य का अर्थ है देखना अर्थात् अब आप न जोर से जपें, न धीरे से। वाणी से जपना बन्द कर केवल श्वास पर दृष्टि रखें कि श्वास कब अन्दर गयी, कब लौट कर आयी– इसे जानें! वह बाहर कितनी देर तक रुकी? (लगभग एक सेकण्ड यह श्वास बाहर रुकती है।) फिर कब यह अन्दर आई, उसे पहचानें। अन्दर कितनी रुकी, उसे समझें। कब लौटकर आयी, उसे देखें। मन को द्रष्टा के रूप में खड़ा कर दें। श्वास को देखा भर करें। दो-चार बार श्वास को देखते-देखते इस श्वास में चिन्तन से नाम ढाल दें। श्वास आयी तो 'ओम्', गयी तो 'ओम्'...'ओम्'। आप राम जपते हैं तो श्वास आने पर राम या केवल 'रा' और श्वास बाहर निकलते समय राम या केवल 'म'। 'रा' और 'म' की एक धुन लग जाय, श्वास से उसे देखते रहें।

सृष्टि में एक परमात्मा ही सत्य है। उसे भाषा-भेद से कुछ भी पुकारें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए जल को यहाँ पानी कहते

हैं, मद्रास में इसे तन्नी कहते हैं; अंग्रेजी में इसे वाटर, फारसी में आब कहें तो क्या कोई दूसरी वस्तु मिलेगी? भाषा कुछ भी हो, सत्य तो एक है। भगवान श्रीकृष्ण ने बताया– अर्जुन! तू 'ओम्' का जप कर (गीता, 8/13)। वेदोक्त महापुरुष भी 'ओम्' ही जपते थे। 'ओम्' जपने के अधिकार-अनधिकार के विवाद में न पड़कर भक्तिकालीन महापुरुषों ने राम जपना शुरू किया। घट-घट में जो रमण करता है वह है राम! 'ओ' अर्थात् अविनाशी परमात्मा, 'अहं' अर्थात् आप स्वयं; जिसका निवास आपके हृदय में है। ओम् कहो या राम, आशय एक ही है। इनमें से जो अधिक रुचिकर हो, आप जप सकते हैं।

'पश्यन्ती' नामजप का तीसरा स्तर है। इस वाणी का उतार-चढ़ाव श्वास पर है जैसा कि अभी बताया गया कि श्वास को देखें। श्वास को मन जहाँ देखने लगे, चिन्तन से उसमें नाम ढाल दें कि श्वास आयी तो ओम्, गयी तो ओम्; अन्य संकल्प या चिन्तन बीच में आने न पाये। कुछ दिन तो नाम को देखने का अभ्यास करना पड़ता है फिर यह नाम श्वास में ढला-ढलाया मिल जायेगा, ढालना नहीं पड़ेगा, क्योंकि आप पायेंगे कि श्वास सिवाय नाम के और कुछ कहती ही नहीं है। हम-आप श्वास की निर्मल अवस्था से भटक गये हैं इसी से श्वास में नाम आरम्भ में सुनायी नहीं पड़ता। इस जागृति के पश्चात्– **'उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥'** *(मानस, 5/33/3)*– भगवान का स्वभाव अर्थात् वह कैसे साधक को उठाते-बैठाते, भजन कराते, योगक्षेम का निर्वाह करते हैं, भगवान का यह स्वभाव जिन्हें जानने में आ गया, उन्हें भजन छोड़कर कुछ अच्छा लगता ही नहीं। भजन की सुखमनी अवस्था का भी यही अभिप्राय है। आज मन भजन से भाग रहा है लेकिन नाम-जप के सतत अभ्यास से पश्यन्ती की परिपक्व अवस्था में वही मन बिना लगाये ही भजन में लग जायेगा, मन का सहज धरातल वही हो जायेगा। इसी का नाम है सुखमन अर्थात् मन सुखपूर्वक श्वास में प्रवाहित हो जाय, भजन करने में मन को सुख मिलने लगे। एक बार मन श्वास में नाम देखने लग गया तो सुरत बाँस की तरह खड़ी हो जाय, वृत्ति तैलधारावत् श्वास से जपने में लग जाय। यह संत यहाँ कहते हैं कि घर में दीपक जल गया,

प्रभु का स्वरूप झलका तो अभ्यास बढ़ाकर प्रभु के लिए शय्या लगा लें। कौन-सी शय्या? 'सुखमन सेज'– मन सुखपूर्वक भजन में डूबता चला जाय। यह शय्या 'परम तत रहिया'– परम तत्त्व भगवानपर्यन्त दूरी तय करने की साधना है। परम तत्त्व परमात्मा है कैसा? तो, **'पिया निरगुन निराकार।'**– वह प्रभु हैं कैसे? सत्-रज-तम तीनों गुणों से अतीत त्रिगुणातीत, निराकार! उनका कोई आकार नहीं है। **'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'**– उस परमात्मा को वही जान पाता है जिसे वह जना देते हैं। **'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।'** ***(मानस, 2/126/3)***– उन्हें जानकर साधक भी वही हो जाता है; कौन किससे क्या कहे?

माता पार्वती ने भगवान भोलेनाथ शिव से प्रश्न किया कि भगवान कैसे हैं? शंकरजी ने बताया– **'बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।'**– बिना पैरों के वह चलता है, बिना कानों से वह सुन लेता है। क्या कोई चित्रकार ऐसा चित्र बना सकता है? इतना ही नहीं, **'कर बिनु करम करइ बिधि नाना।'**– बिना हाथ के तरह-तरह के कार्य करता है।

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

(मानस, 1/117/5-8)

वह बगैर शरीर के स्पर्श करता है, बगैर मुँह के बोलता है, बिना आँख के देख रहा है, बिना नासिका के गंध ग्रहण कर रहा है। उसके कार्य अलौकिक हैं। लौकिक वह है जो दुनिया में घटित होता है; अलौकिक वह जो दुनिया में है ही नहीं।

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सो दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।

(मानस, 1/118)

जिसे वेद और बुध इस प्रकार गायन करते हैं जिसका मुनि लोग ध्यान

धरते हैं। किसका? जो बिना पैरों के चलता है, बिना शरीर के स्पर्श करता है उसका ध्यान धरते हैं। भगवान जब मिलते हैं तो किस रूप में मिलते हैं?-

पिया निरगुन निराकार। बिरहिनी मंदिर दियना बार।

जब निर्गुण निराकार पिया मिल ही गये, कहीं कोई कमी, कोई कसक रह ही नहीं गयी, तो-

गावहु री मिलि आनँद मंगल, यारी मिल के यार।

अब जब वृत्ति सिमट गयी, इन्द्रियाँ संयत हो गयीं, मन सुखपूर्वक लगने लगा, संयम इतना सधा कि निराकार निर्गुण प्रभु विदित हो गये तभी मंगल है, आनन्द है।

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।

(मानस, 1/196/5)

जो आनन्द के समुद्र हैं, सहज सुख की राशि हैं, उस सुखराशि में से एक बूँद जिस पर छिड़क दें वह तीनों लोक में सुपास पा जाता है।

सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

(मानस, 1/196/6)

उनका नाम राम है। जब वह मिल ही गये तो '**गावहु री मिलि आनंद मंगल**'। अमंगल माने अकल्याण, मंगल माने कल्याण। अब कल्याण ही कल्याण है। कब? '**यारी मिल के यार**'- यार अर्थात् वह प्रेमास्पद जिसके लिए हम तड़प रहे थे, जिसमें प्रीति प्रवाहित थी, उन प्रभु से मिलकर आनन्द मनायें, मंगल गायन करें।

संक्षेप में, भगवत्प्राप्ति का पथ विरह का, वेदना का है-

हँसि हँसि कंत न पाइयाँ जिन पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जौ पिय मिलैं कौन दुहागिन होय।।

प्रियतम की प्राप्ति की तड़प इतनी बढ़ जाती है कि,

कै बिरहिन को मीचु दे कै आपा दिखराय।
रात दिवस का दाझना मो पै सह्यो न जाय।।

इतनी बेचैनी पर वह निष्ठुर मिलता है किन्तु इसके लिए प्रेमपूरित हृदय से एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर करके नाम का जप करें, नाम का दीप जलायें। हाँ, निवृत्ति प्रदान करनेवाले भजन की जागृति सद्गुरु से है।

हमारे पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि "भगवान आदेश न दें तो घर छोड़ना पाप है और यदि वह आदेश दे दें तो घर में रहना पाप है। हमार तनिकौ मन नहीं रहा घर छोड़ने का। हो! भगवान ने कान पकड़ के घर छुड़ा दिया।"

अपने बचपन का संस्मरण सुनाते हुए गुरु महाराज कहते थे कि वह मात्र दो-तीन दिन पाठशाला गये थे। इसी बीच किसी भूल पर उनके शिक्षक ने एक चटकना मार दिया। वह लगे मचलकर रोने। माँ ने कहा– भाड़ में जाय ऐसी पढ़ाई। आज से मेरा बेटा नहीं पढ़ेगा। पार्थिव शिक्षा का पाठ उसी दिन से महाराजजी के जीवन से उठ गया।

महाराजजी का जन्म-स्थान रामकोला उन दिनों एक गाँव ही था। क्षेत्रीय वातावरण के अनुसार महाराजजी की अभिरुचि दण्ड-बैठक, कसरत और कुश्ती में हो गयी। गाँव में लगभग बारह अखाड़े थे और महाराज क्रमशः हो गये सबके उस्ताद। समीपवर्ती पन्द्रह-पचास गाँवों में वह कुश्ती में कभी हारे ही नहीं। उनका अरमान था कि बगल के गाँव में महीने–दो महीने में भारतप्रसिद्ध पहलवान गामा आनेवाला था। वह तैयारी कर रहे थे कि हाथ मिलाकर देखूँगा, उसमें और हममें कितना अन्तर है। प्रतिदिन पाँच किलो दूध, मनचाहा पिस्ता-बादाम, मनचाहा घी और दिन-रात व्यायाम.....मस्ती भरा जीवन था।

महाराजजी की माताजी ने दौड़-धूप कर उनका विवाह करा डाला लेकिन जिसे शरीर का शौक होता है, उसे कहाँ की शादी और कहाँ का ब्याह! महाराज जी को भी शादी से कोई मतलब ही न था। महाराज बड़े स्पष्टवादी थे, कहते थे– "हो! हमार महतरिया हमारी गर्दन पकड़कर उस कोठरी में धकेल दे जहाँ हमारी पत्नी घूँघट डाले बैठी रहती और बाहर से दरवाजा बन्द कर देती।"

महाराजजी बताते थे, "हो! साधु होने को हमने कभी सोचा भी न था। घर में खाने का खूब आराम! पत्नी भी गोरी-गोरी नीक लागत रही। किसी प्रकार का कष्ट न था। मन्दिर में हम कभी गये नहीं, महात्माओं को नजदीक से कभी प्रणाम भी नहीं किया। भागवत या रामायण क्या पढ़ते जब कभी पढ़े-लिखे नहीं! दिनभर मस्ती, दण्ड-बैठक-कसरत।"

महाराजजी ने बताया कि उन्हें अनायास तीन बार आकाशवाणी हुई। पहली आकाशवाणी तब हुई जब वह कुछ घरेलू सामान खरीदने बाजार जा रहे थे। उनके मस्तिष्क में जोरों की आवाज गूँजी– 'इन महात्मा को भोजन कराओ।' आवाज इतनी तेज थी कि महाराजजी वहीं शिर पकड़कर खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद संयत होने पर देखा, वह महात्मा वहाँ से जा चुके थे। दिनभर वह उन्हें ढूँढ़ते रह गये। सायंकाल वह मिले, उन्हें भोजन कराया।

दूसरी आकाशवाणी के पीछे गाँव की एक घटना थी। महाराजजी कहते थे–

लीला करन चहत प्रभु जबहीं। कारन खड़ा करत हैं तबहीं॥

भगवान जिसे बुलाना चाहते हैं, उसकी ऐसी नस दबा देते हैं कि वह सीधे उनकी गोद में जा गिरता है, उसे अगल-बगल देखने का अवसर भी नहीं देते। रामकोला बड़े-बड़े जमींदारों का गाँव था। उनमें आठ-दस तो ऐसे थे जिनकी आठ-आठ, दस-दस हजार एकड़ जमीन नेपाल की तराइयों तक फैली थी। अब उन रईस के लड़कों को काम-धाम तो करना नहीं था, ठाठ-बाट से घूमा करते थे। उन्हीं दिनों एक गरीब दर्जी के घर में बहू आई तो रईसों के लड़के उसके घर का चक्कर लगाने लगे। उसने सबको डपट कर भगा दिया।

इस घटना के पश्चात् महाराज उस गली से निकले। उसकी निगाह इन पर पड़ी तो उसने एक अधेड़ महिला से एक पत्र भेजा कि आप चाहें तो मैं जन्मभर आपसे सम्बन्ध रख सकती हूँ। महाराजजी बताते थे कि "हो! हम चरित्र के कच्चे कभी न थे, किसी की बहू-बेटी को कभी नजर उठाकर देखा तक न था, न मन में कभी इस तरह की कल्पना ही थी लेकिन जब हमने यह

सुना कि उसने उन बाबू को भगा दिया, उन साहब को डाँट दिया, बड़े ठाकुर के लड़के को दुत्कार दिया और हमको पसन्द किया! इतना मन में आया कि बस कुतूहल जग उठा।'' महाराज जी कहते थे– ''हो! दो बजे दिन में चिट्ठी मिली। उसी संदेशवाहिका से पढ़वाकर सुना, उसी ने अर्थ समझाया।''

अब दो बजे दिन से शाम तक का समय काटे नहीं कट रहा था। तीसरे प्रहर से ही वह सजने-सँवरने लगे। थोड़ा तेल फुलेल लगाया, रेशमी गंजी पहन ली, एकाध फूल खोंस लिया! देहाती आदमी भला कौन-सा शृंगार करते। किसी तरह से शाम हुई। जब भली प्रकार अँधेरा हो गया तब वह घर से निकले। उन्हें भय था कि कोई उनकी भावना भाँप न ले। लोग क्या कहेंगे? **'इत उत चितइ चला भड़िहाईं।'** *(मानस, 3/27/9)* कुत्ता सूने घर में दबे पाँव जाता है, बर्तन-भाँड़े में मुँह डालकर खाने-पीने की वस्तु लेकर भाग जाता है। दबे पाँव वह चले जा रहे थे।

एक लम्बे चौड़े घने बगीचे के दूसरी छोर पर संकेत-स्थल था। बगीचे के मध्य पहुँचते ही अकस्मात् आपके मन में एक विचार आया कि मैं कभी भयभीत हो रहा हूँ, कभी आगे बढ़ रहा हूँ। कहीं मैं पाप करने तो नहीं जा रहा हूँ। इतना सोचना था कि बड़ी जोर से आकाशवाणी हुई– 'भयंकर पाप करने जा रहे हो। घोर नरक में जाओगे।'

इतना सुनते ही महाराज के रोयें फूट गये, पाँव मन-मन भर के बोझिल हो गये, उठाने से उठते ही न थे जैसे पाँव हैं ही नहीं। आधा घण्टा तक वह इसी प्रकार जड़वत् खड़े रहे। ऐसा लगने लगा जैसे कुछ लोग अँधेरे में खड़े हैं, उन्हें अभी पकड़कर खा जायेंगे। काली-काली भयंकर आकृतियाँ दिखायी पड़ने लगीं। आधे घण्टे में चेतना लौटी, पाँव हिलाया तो हिले। महाराजजी बिना कुछ सोचे-समझे वापस लौट पड़े। जब बगीचे के किनारे आ गये तो पुनः आकाशवाणी हुई– 'इस मंदिर में तुम्हारे गुरु महाराज हैं।'

महाराजजी मंदिर में चले गये। यह एक खण्डहर हो चला शिवालय था। पचासों साल से कोई पुजारी उसमें गया ही न था। आप उसमें घुसकर

शिवलिंग की परिक्रमा कर बाहर निकल आये। उन्हें बड़ी झुँझलाहट हुई कि कौन हमारे पीछे पड़ा है? कौन जोर से बोलता है? कौन आहिस्ता बोल रहा है? अभी आकाशवाणी हुई कि इसमें गुरु महाराज हैं, किन्तु इसमें तो कोई नहीं है। इतने में मन्दिर के भीतर से खाँसने की आवाज आयी। वास्तव में एक महापुरुष भीतर एक अँधेरे कोने में बैठे थे। महाराजजी ने वहाँ प्रकाश की व्यवस्था की और तीन दिन-रात उनकी सेवा में लगे ही रह गये।

इसी अल्प अवधि में महाराजजी ने साधना की विधि समझा और भजन में लग गये। गाँव से एकाध फर्लांग की दूरी पर एक झाड़ी में वे बैठ गये, फिर लौटकर घर गये ही नहीं। उनके गुरुदेव सत्संगी महाराज भी उन्हें उपदेश देकर चले गये। वस्तुतः भजन करनेवाली क्रिया को बहुत दिनों तक समझना-रटना नहीं पड़ता। भगवान राम को बहुत समय तक नहीं पढ़ना पड़ा– **'गुरु गृहँ गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई।।'** *(मानस, 1/203/4)*– क्रियात्मक साधना समझकर क्रिया में संलग्न हो जाना होता है। महाराजजी चिन्तन में डूब गये। अब गाँवभर परेशान! पहलवानी के शिष्य परेशान हो गये कि उस्ताद गये कहाँ? छः दिन पर लोगों ने देखा कि वह झाड़ी में बैठे हैं। पूरा गाँव इकट्ठा होकर पूछने लगा। महाराजजी ने किसी से बात नहीं की। एक ने कहा– वह लँगड़ा जो साधु है, उसके साथ हमने इनको देखा था। दूसरे ने कहा– वह लँगड़ा तो बड़ा जादूगर है, लगता है उसी ने कुछ कर दिया। ऐसा करो कि उसे ढूँढ़ो। उसका एक पाँव टूटा है, दूसरा भी तोड़ डालो। पचीस-तीस जवान लाठी लेकर उन्हें ढूँढ़ने लगे किन्तु उनका कहीं पता न चला। धीरे-धीरे एक माह व्यतीत हो गये। सबकी लाठियाँ घरों में रख गईं तब सत्संगी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। लोगों की भीड़ एकत्र हो गयी। वे पूछने लगे– कहो लँगड़ू बाबा! इस लड़के की बुद्धि को क्यों भ्रष्ट कर दिया? वह महात्मा तड़के– क्यों? बुद्धि भ्रष्ट करने का हमने ठेका ले रखा है क्या? उस औरत को हमने ही पागल बनाया था क्या? उन बाबू साहब का लड़का पागल है तो हमने ही उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया था क्या? अपने कर्मों को लोग देखते नहीं, कहते हैं बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया।

अब लोग करते भी क्या! वस्तुतः वह महापुरुष थे लेकिन क्षेत्र में सभी उन्हें पागल ही समझते थे।

महाराजजी भजन में लगे ही रह गये। चार महीने में भजन जागृत हो गया। महाराज बताते थे कि ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे कोई अपने घर के आँगन में गड़ा करोड़ों का धन अनायास पा ज़ाय। इस प्रकार भजन की जागृति हो गयी, योग-साधना जागृत हो गयी। भगवान उठाने-बैठाने लगे, चलाने लगे, भजन कराने लगे।

हमने पूछा– "महाराजजी! सबको आकाशवाणी नहीं होती। आपको क्यों हुई?" महाराजजी ने बताया– "हो, यह शंका हमें भी हुई थी। इस पर भगवान ने हमारे पिछले सात जन्मों का दृश्य दिखाया। पिछले सात जन्मों से मैं लगातार साधु रहा हूँ। इनमें से भी चार जन्म साधुओं के बीच कमण्डल लेकर झूठ-मूठ का ही घूम रहा हूँ।" हमने पूछा– "झूठ-मूठ से आपका क्या आशय है?" महाराजजी ने बताया– "हो! उन जन्मों में हमें आता-जाता कुछ भी न था। नाम भी जपता था तो कभी 'ॐ तत् सत्', कभी 'अलख निरंजन' तो कभी 'सीताराम'। उन जन्मों में हम तिलक लगाते थे, विभूति भी रमाया, भगवा कपड़े पहन कमण्डल धारण किया, तो कहीं सन्तों के बीच परम त्यागी बनकर खड़ा हूँ। महात्मा लोग अपने सम्प्रदाय की जो भाषा बोलते हैं, वह सब याद था। इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह में कमी नहीं थी लेकिन भजन जागृत नहीं था। पिछले तीन जन्मों से अच्छा साधु रहा हूँ जैसा कि होना चाहिये। इष्टदेव रथी थे, योग-साधना जागृत थी। पिछले जन्म में निवृत्ति हो चली थी लेकिन दो-तीन इच्छायें मन में रह गयी थीं जिनसे निवृत्ति के लिए जन्म लेना पड़ा। एक कुतूहल था कि यह शादी-विवाह क्या होता है? दूसरा कुतर्क था कि गाँजा पीकर संतलोग बहुत झूमते हैं, इसमें कौन-सा सुख है? यद्यपि हमने इसे पीया नहीं किन्तु मन में जिज्ञासा थी। कुछ देहाभिमान भी बना हुआ था कि मैं कुलीन हूँ, बड़े घराने का हूँ, पहलवान हूँ, धनवान हूँ, विद्वान हूँ। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! देहाभिमानियों की गति नहीं होती। भगवान जब देखते हैं कि देहाभिमान किसी भी तरह से छूट

नहीं रहा है तो भगवान एकाध जन्म ऐसा भी दे देते हैं; जैसे– सन्त कबीर लहर तालाब पर मिले, ईसा कुआरी कन्या के पुत्र हुए, व्यास कुआरी कन्या-पुत्र, नारद दासीपुत्र, हनुमानजी 'पवनसुत...शंकरसुवन....केसरीनन्दन', शृंगी ऋषि मृगों के झुण्ड में, भरद्वाज कर्ण की तरह सन्दूक में बहाये गये बालक के रूप में प्रयाग में मिले – कुछ ऐसा जन्म कि बालक अभिमान भी करे तो किस पर? इस जन्म में भगवान ने थोड़े ही समय में सब दिखा-सुनाकर, शादी-विवाह कराकर दो चटकना मारा कि यह पाप और यह पुण्य! यह रास्ता और यह गुरु महाराज! और कर भजन! हो, भगवान ने हमारा कान पकड़कर बलपूर्वक हमें साधु बना दिया।''

इष्टदेव के निर्देशन में भजन और निराधार विचरण के क्रम में महाराजजी सती अनुसुइया के घनघोर जंगल में पहुँच गये। खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं। वहीं एक शेर का भी निवास था। भगवान यदि आपको शेर की गुफा में बैठा दें तो बैठना ही पड़ेगा। पूज्य सत्संगी महाराज भक्तों से प्रश्न किया करते थे– ''सृष्टि में सबसे गरीब कौन है?'' लोग बताते– ''कन्या। उस बेचारी का हाथ लूले-लँगड़े चाहे जिसे पकड़ा दो, वह कुछ नहीं बोलेगी। उसके साथ चली जायेगी।'' सत्संगी महाराज कहते थे– ''नहीं हो, उससे भी गरीब सोचकर बताओ।'', तो लोग कहते– ''गाय; क्योंकि उसे कसाई के हाथ दे दो तो भी वह विरोध नहीं करती।'' फिर वह पूछते– ''उससे भी गरीब कोई है?'' लोग प्रार्थना करते कि, ''आप ही बतायें भगवन्!'' वह बताते कि, ''सृष्टि में सबसे गरीब वह साधक है जिसके ऊपर इष्टदेव रथी हैं। वह तुम्हें शेर की गुफा पर ही क्यों न बैठा दें, तुम्हें बैठना ही पड़ेगा। तुम्हारे लिये दुनिया में दूसरी जगह है ही नहीं।''

अनुसुइया में आपका निवास उपवास से आरम्भ हुआ। उपवास के चौदहवें दिन लघुशंका में महाराजजी को रक्त दिखायी पड़ा तो शरीर के प्रति थोड़ी करुणा हो आयी। वह भगवान पर ही बिगड़ पड़े– इष्टदेव बने बैठे हो! घोर जंगल में लाकर पटक दिया, खाने-पीने के लिए कुछ है ही नहीं। अभी खून गिर रहा है, चार दिन में शरीर भी छूट जायेगा। जब शरीर ही नहीं

रहेगा तो भजन कौन करेगा! भगवान ने उस दिन आदेश दिया– ठीक है जब खाने का ही मन है तो कल से खाओ। दूसरे दिन से उस घनघोर जंगल में भी खाने-पीने की अयाचित व्यवस्था हो गयी तो महाराज को चिन्ता हुई कि प्रभु ने यह रूखा वचन क्यों कहा कि खाना है तो कल से खाओ। वस्तुतः भगवान चाहते क्या थे? उस दिन भगवान ने बताया कि यदि इक्कीस दिन न खाते तो जीवनपर्यन्त उन्हें खाने की आवश्यकता न होती। शरीर ज्यों-का-त्यों बना रहता, चेहरे पर हवा भर भी शिकन न होती। तुम्हारे द्वारा जनता का सबसे अधिक कल्याण होता। सिद्धियाँ मिलतीं, स्वरूप मिलता, स्थिति मिलती। यहाँ पहरा लग जाता। जल्दी कोई मेरा दर्शन भी न पाता। अब तो मेरा खुला दरबार हो गया।

महाराजजी जब इसकी चर्चा करते तो अपने शिर के बाल तक उखाड़कर फेंक देते और कहते– "हो! क्या बतायें! चौदह दिन बीत गये थे। सात ही दिन तो बाकी था, वह भी बीत जाते। भगवान भी इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं। अरे, उनको कह देना चाहिये था कि बेटा, सात दिन और धीरज धर तो उनका क्या बिगड़ जाता? बेटा! आज्ञापालन ही भजन है। आज्ञापालन में गुंजाइश नहीं निकालनी चाहिए। भजन जागृति के पश्चात् इष्ट सदैव साथ-साथ चलते हैं। भगवान ऐसे ही बतियावत हैं जैसे हम तुम बैठकर घण्टों बातें करें और क्रम न टूटे। भजन की यह जागृति सबके लिए सुलभ है। इसके लिये आरम्भ में चाहिये कि एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर कर उन प्रभु को पुकारो, उनके दो-ढाई अक्षर के एक नाम का जप करो। चलते-फिरते, खाना खाते, खुरपी चलाते, लड़का खेलाते हर समय उनका स्मरण बना रहे, नामजप चलता रहे।"

जो धर्म शास्त्र पर आधारित होता है, वह अक्षुण्ण होता है। जो धर्म किंवदंतियों पर, दंतकथाओं पर, रीति-रिवाजों पर आधारित होता है वह कुछ समय बाद तिरोहित हो जाता है। पिछले दो-ढाई हजार वर्षों से यह भारतभूमिवासी दंतकथाओं और रूढ़ियों को धर्म कहते चले आ रहे हैं, जिसके कारण आपके पूर्वजों ने अत्याचारों को झेला, जजिया कर देकर जीवित बचे। धर्म के नाम पर इतनी भ्रान्ति कि विधर्मियों ने कुएँ का पानी दूषित कर दिया जिसे पीकर

सभी धर्मभ्रष्ट घोषित कर दिये गये। विश्व को प्रथम धर्मशास्त्र प्रदान करनेवाला भारत अपने ही घर में धर्मशास्त्रविहीन भटकने लगा। विश्व की सबसे समृद्ध भाषा संस्कृत! उसका पठन-पाठन एकांगी हो गया। सिवाय ब्राह्मण के उसे कोई पढ़ नहीं सकता। शिक्षा पर प्रतिबन्ध, शास्त्र पर प्रतिबन्ध, शस्त्र पर प्रतिबन्ध, इतिहास पर प्रतिबन्ध लग गया। लार्ड मैकाले ने कहा– किसी देश को गुलाम रखना हो, हजारों वर्ष गुलाम रखना हो तो उसका इतिहास, शिक्षा, शास्त्र, भाषा और संस्कृति छीन लो। वह स्वाधीन होने की प्रेरणा कहाँ से पायेगा? मैकाले ने नया कुछ नहीं कहा। जो घटना भारत में घट चुकी थी, उसी को योजनाबद्ध तरीके से उसने लागू करा दिया।

आज शास्त्र पुनः आपकी पलकों के सामने है। गीता आपका धर्मशास्त्र है। सृष्टि का यह आदिशास्त्र भगवान के श्रीमुख से प्रसारित है। 700 श्लोकों का यह शास्त्र मूलरूप से संस्कृत में है। संस्कृत आज हम सबके बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी है इसलिए इसके आशय को ज्यों-का-त्यों जानने के लिए इसका यथावत् भाष्य **'यथार्थ गीता'** गुरु महाराज की प्रेरणा से लिखी गयी है। इसमें है कि एक परमात्मा को श्रद्धा से धारण करना धर्म है। उसे कैसे धारण किया जाय?–इसकी नियत विधि गीतोक्त कर्म का आचरण ही धर्माचरण है। हम कौन हैं? अस्पृश्य हैं या पवित्र? धर्म क्या है? वर्ण क्या है? साधना किस प्रकार की जाय?– इन सारे प्रश्नों का समाधान इस **'यथार्थ गीता'** से हो जायेगा। यह आपका धर्मशास्त्र है इसलिए सबके पास यह होना चाहिये।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

वा घर की कोई सुध न बतावे

वा घर की कोई सुध ना बतावे, जा घर से जीव आया है।
तत पर शून्य शून्य पर तत है, ता ऊपर मठ छाया है।
ब्रह्मा विष्णु महेसउ नाहीं, नहीं कर्म नहिं काया है॥
चाँद सूर्य दोउ बने दहीरा, दधिया मथि घिउ खाया है।
कहत कबीर भेद की बानी, बिरला कोउ लख पाया है॥

× × × ×

प्रस्तुत पद में संत कबीर ने बताया है कि मनुष्य का वास्तविक घर कौन-सा है? मनुष्य वहीं रहता है जहाँ उसका मन रहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। लंका का निवासी विभीषण जब भगवान राम की शरण में आया तो सुग्रीव ने कहा कि– इसे बन्दी बना लिया जाय। यह उसी रावण का भाई है जिसने माता सीता की चोरी की है। अंगद ने कहा– इसे मार डाला जाय। किसी ने कुछ कहा। हनुमान तटस्थ खड़े थे यद्यपि विभीषण से वह पहले ही मिल आये थे। भगवान ने कहा कि नहीं, निसाचरों से हमें कोई भय नहीं है। **'जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥'** *(मानस, 5/43/6)*– लक्ष्मण उन सबको एक ही पल में मार डालने में समर्थ हैं। किन्तु **'जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई॥'**– यदि यह भयभीत होकर हमारी शरण में आया है तो मैं अपने प्राणों की तरह इसकी रक्षा करूँगा।

विभीषण सन्मुख आया तो भगवान ने कहा– 'आओ लंकेश!' और समुद्र के जल से उसका अभिषेक कर दिया। विभीषण ने कहा– प्रभो! लंकेश तो रावण है। भगवान बोले– उसकी आयु के दिन पूरे हो गये हैं। अब तो यह उत्तरदायित्व आपको ही वहन करना पड़ेगा। अपना समाचार बताइये कि आप कैसे हैं? **'खल मंडली बसहुँ दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि**

भाँती।।' *(मानस, 5/45/5)*– हे सखे! आप तो खलमंडली में निवास करते हैं। धर्म का निर्वाह कैसे कर पाते होंगे? विभीषण ने कहा–

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम।।

(मानस, 5/46)

प्रभो! जब तक जीव कामनाओं का त्याग कर आपका भजन नहीं करता, तब तक उसके लिए सुख है ही नहीं। सपने में भी उसे विश्राम नहीं मिल सकता। सारे अनर्थ का मूल काम है।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा।।
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।।
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु परताप रबि नाहीं।।

(मानस, 5/46/1–4)

जब तक जीव आपका भजन नहीं करता, तब तक उसके हृदय में खलों का निवास रहता है। खल लंका में नहीं रहते। खल हृदय में बसते हैं। विभीषण ने खलों के नाम गिनाये– लोभ, मोह, मत्सर, मद, मान, ममता, राग और द्वेष। ममता घोर अंधकारपूर्ण रात्रि है। ये खल जीव के मन में तब तक निवास करते हैं जब तक प्रभु का प्रतापरूपी सूर्य हृदय में उदित नहीं हो जाता।

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे।।

(मानस, 5/46/5)

प्रभो! आज आपका प्रताप सूर्य उदित हो गया है। अब मैं सकुशल हूँ। आपके चरण-कमलों का दर्शन करके मेरा महान भय मिट गया है। इस प्रकार हृदय में जब दैवी वृत्ति का बाहुल्य है तब जीव के लिए कुशल है अन्यथा आसुरी वृत्ति में जीव का कल्याण नहीं है।

सन्त कबीर उस वास्तविक घर का परिचय एक अन्य पद में देते हुए कहते हैं–

तवन घर चेतिहे रे भाई, तोहरा आवागमन मिटि जाई।

हे भाई! उस घर के लिए तैयारी करो जिस घर में प्रवेश करते ही आवागमन मिट जाय। आना अर्थात् जन्म, जाना अर्थात् मृत्यु; यह जन्म-मृत्यु का बंधन कट जाय। उस घर की व्यवस्था कैसी है? इस पर कहते हैं–

जा घर लक्ष्मी झाड़ू देत हैं, शम्भु करें कोतवाली।
जा घर ब्रह्मा बने टहलुआ, विष्णु करें रखवाली।।
तवन घर चेतिहे रे भाई।।

उस घर में सेवा के लिए आपको कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ेगा। वहाँ लक्ष्मी झाड़ू देती हैं, शिवजी न्याय करते हैं, ब्रह्माजी सेवा कर रहे हैं और पालन-पोषण की जिम्मेदारी भगवान विष्णु देख रहे हैं।

चलहु हंसा वा घर चलहु, जहाँ आवागमन न होई।

उस घर में रहने के पश्चात् आवागमन सदा-सदा के लिए समाप्त हो जायेगा। तुम रहोगे, तुम्हारा शाश्वत घर रहेगा, शाश्वत जीवन रहेगा। वह घर है कैसा? इस पर कहते हैं–

कहत कबीर सुनो भाई संतो, अचरज कहलो न जाई।
तवन घर चेतिहे रे भाई।।

संत कबीर कहते हैं कि वह घर एक आश्चर्य है, वाणी का विषय नहीं है। वह बाहरवाले घर जैसा नहीं है, अनुभवगम्य है। उसे वही जानता है जिसे वह उपलब्ध है। वह घर कैसे मिलेगा?

घर कीन्हे घर जात है, घर छाँड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच में, प्रेमपुरी सरसाय।।

घर में चिपककर रहने से भी वह घर नहीं मिलेगा। घर छोड़ने से भी वह घर नहीं मिलेगा। घर और बन के बीच में प्रेम अर्थात् श्रद्धाभाव, प्रेम की कुटिया बना लो और उसी में रहो; क्योंकि–

हरि ब्यापकु सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

अग जग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

(मानस, 1/184/5, 7)

इसलिए केवल प्रेमपूरित हृदय से उन प्रभु का स्मरण करें, भगवान अवश्य मिलेंगे। इसी भाव का यह पद भी है–

वा घर की कोइ सुध न बतावे, जा घर ते जीव आया है।

संत कबीर कहते हैं कि उस घर का मार्ग कोई नहीं बताता जहाँ से यह जीव आया है। यह जीव किस घर से आया है?

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

(मानस, 7/116/2)

यह जीवात्मा ईश्वर का विशुद्ध अंश है इसलिए इसका विशुद्ध घर तो परमात्मा ही है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! प्रकृति गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं परम चेतन बीजरूप से पिता हूँ। शेष सब तो निमित्त मात्र हैं। पञ्चभौतिक शरीर का जन्म तो माता-पिता से होता है लेकिन स्वरूप के जन्म में भक्ति ही माता है और ज्ञान ही पिता है। गीता में है–

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।। *(11/38)*

भगवान ही परम धाम हैं। यह संसार तो एक भटकाव है। आज जन्म है तो कल मृत्यु। आज सुख है तो कल दुःख। जिन सूरमाओं ने बहुत कुछ अर्जित किया, आज उनमें से किसी का भी अस्तित्व नहीं है। सिकन्दर महान, अशोक महान, महाराणा प्रताप, शिवाजी इत्यादि के पराक्रम की कहानियाँ सुनने को मिलती हैं किन्तु उनकी उपलब्धियाँ आज दृष्टिगोचर नहीं होतीं। भीष्म ने कहा था– हस्तिनापुर को जब तक मैं चारों ओर से सुरक्षित नहीं देख लूँगा, तब तक प्राण नहीं त्यागूँगा। जब भगवान कृष्ण महाभारत युद्ध के पश्चात् पाण्डवों को साथ लेकर उनके पास गये कि पितामह! आपके पौत्र

युधिष्ठिर गद्दी पर विराजमान हैं। कहीं कोई विवाद नहीं है। हस्तिनापुर चारों ओर से सुरक्षित है। भीष्म ने कहा– कृष्ण! अब मैं सुख से शरीर का त्याग कर सकूँगा। वह चले गये। उसी हस्तिनापुर पर मुसलमानों का राज्य हुआ, ईसाइयों का राज्य हुआ। इस समय पुनः जनता की निर्वाचित सरकार वहाँ है।

धरा को प्रमाण यही तुलसी, जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।

इस संसार में सब कुछ अस्थिर है। स्थिर है तो एकमात्र परमात्मा। जब तक जीव अपने उसी परमात्म-स्वरूप का दर्शन, स्पर्श और उसमें विलय प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह अपूर्ण है। इस घर का एक ही रास्ता है–

तत पर शून्य शून्य पर तत है, ता ऊपर मठ छाया है।

परम तत्त्व परमात्मा है। उसके ऊपर शून्य है अर्थात् कुछ है ही नहीं। लेकिन जब तक भजन करते-करते मन संकल्प-विकल्प से शून्य न हो जाय, तब तक वह तत्त्व विदित नहीं होगा। आपके और उस परम तत्त्व के बीच यदि कोई रुकावट है तो वह है चित्तवृत्ति। सद्गुरु की शरण में अभ्यास करते-करते यह शून्य में स्थिर हो जाती है, तब वह तत्त्व विदित होता है।

'शून्य पर तत है'– भजन करने में पहले मन नहीं लगता, किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्तवृत्ति का भली प्रकार निरोध हो जाता है। जहाँ श्वास में अथवा चरणों के ध्यान में मन को लगाया जाय, वहाँ वृत्ति का एकतार चलना, क्रम न टूटना ध्यान कहलाता है–

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। *(योग., 3/2)*

तदैवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूप शून्यमिव समाधि। *(योग., 3/3)*

जहाँ ध्यान स्थिर है वहाँ लक्ष्यमात्र का आभास रह जाय, जिसे देखना है केवल वह दिखाई पड़े, देखनेवाले चित्त का स्वरूप शून्य हो जाय – इसका नाम समाधि है। इस निरोध का नाम है शून्य। यही है **'तत पर शून्य'**। इस निरोध के साथ प्रकृति से सम्बन्ध टूट जाता है। प्रकृति जिस मन और चित्त के धरातल पर काम करती थी, टिकती थी वह धरातल समाप्त हो गया तो प्रकृति कहाँ टिके? इसलिए वहाँ ज्योतिर्मय परमात्मा प्रसारित हो जाता है

जिसका नाम है तत्त्व। यही **'शून्य पर तत'** है। उसे जानकर वह वही हो जाता है– **'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।'** उसी में समाहित हो जाता है।

ता ऊपर मठ छाया है।

उसे जानते ही तत्क्षण वही उसका घराना हो जाता है। भगवान कहते हैं कि अर्जुन! न तो मैं वेद से, न यज्ञ से, न कठोर तप से ही प्राप्त होनेवाला हूँ। लेकिन–

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ *(गीता, 11/54)*

अनन्य भक्ति के द्वारा, अनन्य अर्थात् अन्य न, किसी देवी-देवता को न भजते हुए जो मुझे भजता है, ऐसी अनन्य भक्ति के द्वारा मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए, जैसा कि तूने देखा है, स्पर्श करने के लिए और विलय के लिए भी सुलभ हूँ। कबीर कहते हैं– वही उसका घराना हो जाता है। वही उसी मठ का निवासी हो जाता है।

ब्रह्मा विष्णु महेसउ नाहीं, नहीं कर्म नहिं काया है।

साधना के आरम्भ में भजन की जागृति का नाम ब्रह्मा है। परमात्मा की वह शक्ति जो परवरिश करती है, पालन-पोषण करती है, विष्णु है और साधक के शुभाशुभ संस्कारों का संहार करनेवाली परमात्मा की प्रशक्ति का नाम शिव है। आरम्भ में सभी प्राणी अचेत हैं– **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'** *(गीता, 2/69)*– अर्जुन! इस जगत्‌रूपी रात्रि में संयमी पुरुष जाग जाता है। गोस्वामीजी कहते हैं–

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥

(मानस, 2/92/2-3)

मोहरूपी रात्रि में सब सोये हुए हैं। रात-दिन जो दौड़-धूप करते हैं, मात्र स्वप्न देखते हैं। कोई स्वप्न घड़ी-दो घड़ी का होता है तो यह 80–90 वर्ष

का है। है तो स्वप्न ही। अपनी अर्जित मान्यताओं को देखने कोई लौटकर नहीं आता– **'सोइ पुर पाटन सोइ गली, बहुरि न देखा आइ।'** किन्तु संयमी पुरुष जाग जाता है। उसे विधि प्रदान करनेवाली शक्ति ब्रह्मा, उसको योगक्षेम प्रदान करनेवाली शक्ति विष्णु और संस्कारों का संहार करनेवाली परमात्मा की शक्ति शंकर से साधना का उत्कर्ष होता है। अन्तिम संस्कार के कटते ही वह परमात्मा स्वरूप में समाहित हो जाता है, ईश्वरीय विभूति फैल जाती है। वह शिव-तत्त्व में स्थित हो जाता है, विभूतियाँ उतर आती हैं; जैसे– कण-कण में व्याप्त है, ज्योतिर्मय है, सर्वज्ञ है, एकरस है। इसी स्थितिवाले पूर्ण सद्गुरु होते हैं। वे ब्रह्मतत्त्वनिष्ठ है इसलिए ब्राह्मण कहलाते हैं। ब्राह्मण एक स्थिति है। वे तत्त्वज्ञ हैं इसलिए तत्त्वदर्शी कहलाते हैं। अब सब कर्म समाप्त हो गये तो भविष्य में जन्म कौन देगा? काया फिर नहीं मिलेगी। कबीर कहते हैं– **'नहिं कर्म नहीं काया है'**।

चाँद सूर्य दोउ बने दहीरा, दधिया मथि घिउ खाया है।

इस स्थिति के लिए आरम्भ में चन्द्रमा और सूर्य दधि रखने के पात्र बन गये और कबीर कहते हैं कि उन्होंने दधि मथकर घी खा लिया है। पिंगला– दाहिने स्वर को सूर्य नाड़ी और इंगला– बायें स्वर को चन्द्र नाड़ी कहते हैं। इसी को भगवान बुद्ध प्राण-अपान या श्वास-प्रश्वास कहते थे। गीता में इस साधना को स्पष्ट किया गया है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ *(4/29)*

अपान = जिसे हमें त्यागते हैं, पान = जिसे हम ग्रहण करते हैं, इस श्वास का निरीक्षण करते हैं। प्राण का अपान में और अपान का प्राण में योगीजन हवन करते हैं। प्राण और अपान की गति रोककर प्राणायाम-परायण हो जाते हैं। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास पर जब सुरत टिक जायेगी, नाम-जप पश्यन्ती की अवस्था में पहुँच जायेगा तो श्वास धीरे-धीरे अचल स्थिर ठहर जायेगी। न भीतर से संकल्प उठेंगे, न बाहर के संकल्प टकरायेंगे। इस प्रकार मंथन करते

बन गया तो **'दधिया मथि घिउ खाया है'**– वह सार-तत्त्व प्रकट हो गया, प्रकृति से सम्बन्ध टूट गया। शेष बचा परमात्मा! वही सार-तत्त्व है। कबीर ने उस सार-तत्त्व का सेवन किया है। वह कहते हैं–

कहत कबीर भेद की बानी, बिरला कोऊ लख पाया है।

यह रहस्य कोई विरला ही पहचान पाता है। जिसके हृदय में साधना जागृत है, वही इसे समझ पाता है।

॥ ॐ श्री सद्‌गुरुदेव भगवान की जय ॥

चोलिया काहे न धुलाई

चोलिया काहे न धुलाई सुन्दर बाँके जोगिया।
जनम जनम की मैली चोली, विषय दाग परि आई।
बिन धोये पिया रीझत नाहीं, जनम अकारथ जाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

राम नाम का साबुन ले लो, सतसंगति दरिआई।
अपने गुरु को कर ले बरेठा, जनम दाग धुल जाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

'रा' से मैल कटे रग-रग की, 'म' से होत सफाई।
धोये जा हर साँस में पल-पल, धुलत-धुलत धुल जाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

गंगा जमुना खूब नहाये, गया न मन का मैल।
आठ पहर जूझत ही बीता, जस कोल्हू का बैल॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

गुरु को जब लगि गुरु नहिं जाना, गुरु आज्ञा नहिं आई।
जान लिया जब गुरु स्वरूप को, सहज मुक्ति होइ जाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

जिसकी चोली निर्मल हो गयी, अमर लोक लिये जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सदगुरु सरन सहाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

× × × ×

(यह भजन हमें गुरु महाराज के सान्निध्य में सती अनुसुइया आश्रम, चित्रकूट, मध्यप्रदेश में एक प्रसिद्ध भजन गायिका से सुनने को मिला था। उन दिनों एक बारात आश्रम के समीप ददरी गाँव के मुखियाजी के यहाँ आयी हुई थी। बारातियों के साथ ग्रामवासी भक्तों की भीड़ महाराजजी के दर्शनार्थ आश्रम पर आ गयी थी। लोग उत्साह से बता रहे थे– महाराजजी! यह बारात मुखियाजी के यहाँ आयी है। महाराजजी ने कहा– हाँ,

हो! अच्छी बारात है। लोगों ने कहा– इसमें बहुत प्रसिद्ध गायिका बाँदा शहर से आयी हैं। महाराजजी ने कहा– अच्छा है। आपलोग सुनें। तब तक उस गायिका ने भी महाराजजी को प्रणाम किया। महाराजजी ने कहा– बैठो भवानी! उधर बैठ जाओ। उसने बैठकर पुनः प्रणाम कर महाराजजी की सेवा में एक भजन सुनाने की प्रार्थना की। अनुमति मिलने पर उसने बड़े भाव से उपर्युक्त भजन प्रस्तुत किया जिसका आशय इस प्रकार है।)

चित्तवृत्ति ही चदरिया है। जन्म-जन्मान्तरों के भले–बुरे दाग इस पर पड़े हैं। जब जिस संस्कार का क्रम आता है, उसी के अनुरूप यह पिण्डरूप प्रदान करता रहता है, वैसा ही जन्म मिल जाता है। संत कबीर ने चित्तवृत्ति को चादर की संज्ञा दी है–

चदरिया झीनी झीनी बीनी।
राम नाम रस भीनी, चदरिया झीनी रे बीनी॥

चित्तवृत्ति इतनी विशाल है कि जड़-चेतन, सारे जीव-जन्तु, वनस्पतियाँ सभी के चित्र इसमें चित्रित हैं। लेकिन सद्‌गुरु की शरण में आने पर कबीर ने कहा– '**चदरिया झीनी झीनी बीनी।**'– चित्तवृत्ति को समेटकर इतना सूक्ष्म कर दिया कि अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म तत्त्व में इसे बुन दिया। कैसे बुना? तो '**राम नाम रस भीनी**'– सदा राम के रस में भिंगो दिया। इसी प्रकार के भजन हैं– '**लागा चुनरी में दाग...**' या '**बलम राउर देसवा में चुनर बिकाय।**' भगवान के दरबार में केवल विशुद्ध चित्त का ही समर्पण होता है; क्योंकि '**निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥**' *(मानस, 5/43/5)*– निर्मल मनवाला जन ही मुझे प्राप्त कर पाता है। भगवान को कपट, छल-छद्म अच्छा नहीं लगता।

इस भजन में संत कबीर ने चित्तवृत्ति को चोली की संज्ञा दी है। साधकों को वे कहते हैं– हे विलक्षण योगी! संयम में प्रवृत्त, योग-साधना में प्रवृत्त योगी! अपने चित्तवृत्ति की धुलाई क्यों नहीं की? प्रश्न उठता है कि इसमें दाग किसका है?

जनम जनम की मैली चोली विषय दाग परि आई।
बिन धोये पिया रीझत नाहीं, जनम अकारथ जाई॥
चोलिया काहे न धुलाई.......

इस चोली में जन्म-जन्मान्तरों के दाग पड़े हैं, जैसा कि कागभुसुण्डिजी ने कहा– **'कवन जोनि जनमेउ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं।।'** ध्रुव ने जब भगवान का दर्शन पाया, तो कहा– "प्रभो! हमने तो सुना था कि करोड़ों-करोड़ों जन्मों तक यत्न करने के पश्चात् कभी आप कृपा कर दर्शन देते हैं, किन्तु मेरे ऊपर तो आपने बड़ी कृपा की कि जो छः महीने में ही मिल गये।" भगवान ने कहा– "ध्रुव! इस पहाड़ की ओर तो देख।" ध्रुव ने कहा– "भगवन्! यह तो मानव-कंकालों का पहाड़ है।" भगवान ने कहा– "ये सारी हड्डियाँ तुम्हारी हैं। जन्म-जन्मान्तरों में यहाँ तुमने तपस्या की है। यह तुम्हारा प्राप्तिवाला आखिरी जन्म है। भजन में केवल छः महीने शेष थे, आज वे पूरे हो गये और मैं मिल गया।" यही है **'जनम जनम की मैली चोली।'** और दाग क्या था? विषय-वासनाओं के दाग। इनकी धुलाई किये बिना **'पिया रीझत नाहीं'**– 'पिया', जिन्हें प्राप्त कर लेने पर इस जीव की प्यास सदा-सदा के लिए मिट जाती है, वह प्रेमास्पद प्रभु इसकी धुलाई के बिना कभी नहीं रीझते। जिसके लिए यह दुर्लभ मानव-तन मिला है, यह अवसर व्यर्थ चला जायेगा – **'जनम अकारथ जाई'।**

मानस में प्रसंग है कि राज्याभिषेक के पश्चात् भगवान राम ने पुरवासियों की एक सभा बुलाई और सबको समझाया–

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

उन्होंने कहा क्या?

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सदग्रन्थन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

बड़े भाग्य से मानव-तन मिला है। यह मानव-तन देवताओं को भी दुर्लभ है – ऐसा सद्ग्रन्थों ने गायन किया है। क्या विशेषता है इस तन में? काम, क्रोध, मद, लोभ, भूख, प्यास, नींद, भय तो जीवमात्र में है, इस मानव-शरीर में कौन-सी विशेषता है? भगवान ने बताया कि यह साधन-धाम है। वह साधन जो आपको मोक्ष प्रदान कर दे, यह मोक्ष का दरवाजा है। ऐसे दुर्लभ मानव-तन को पाकर जिसने अपना निजी परलोक नहीं सुधारा,

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ।। *(मानस, 7/43)*

इसलिए किसी पर एहसान न करें, अपना ही परलोक जो नहीं सुधार लेता वह काल को, कर्म को और ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है। मनुष्य प्रायः दो-तीन बहाने बनाता है कि– (1) समय अनुकूल नहीं है, (2) हमारे कर्म में लिखा नहीं है, (3) ईश्वर हमसे कराते ही नहीं। भगवान राम कहते हैं– ऐसा कुछ नहीं है। यदि मनुष्य शरीर मिला है और उसने अपने परलोक को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया तो सब दोष उसी का है।

इस चित्तरूपी चोली की धुलाई कैसे करें? संत कबीर बहुत सरल उपाय बताते हैं–

राम नाम का साबुन ले लो, सत संगति दरिआई।
अपने गुरु को कर ले बरेठा, जनम दाग धुल जाई।।
चोलिया काहे न धुलाई......

जिस प्रकार वस्त्र धुलने के लिए साबुन का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार चित्त को धोने के लिए राम-नाम का जप आवश्यक है। **'सत संगति दरिआई'**– धुलाई के लिए दरिया अर्थात् जलस्रोत की आवश्यकता होती है। यह स्रोत सत्संग में मिलेगा। बरेठा (धोबी) वस्त्रों के दाग छुड़ा देता है, इसी प्रकार गुरु की युक्ति से जन्म-जन्मान्तरों के दाग धुल जाते हैं। एक सत्संग तो सत्पुरुषों की सभा को कहते हैं, किन्तु मानस के अनुसार, कबीर के अनुसार–

पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सत्संगति संसृति कर अंता।।

पुण्य का पुंज वर्तमान में साथ नहीं देता तब तक संत नहीं मिलते। संत मिले बिना सत्संग नहीं मिलता। पहले संत-संग, तब सत्संग। ऐसा नहीं कि कथावाचक बुला लिया और सत्संग हो गया। वास्तविक सत्संग तो संतों के द्वारा मिलता है। वे बतायेंगे कि सत्य क्या है और उससे संगत कैसे करें?

'सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।'– परम सत्य एकमात्र आत्मा है। चित्त को सब ओर से समेटकर उसकी संगत में लगा दें, यह

सत्संग का वास्तविक आशय है। यह ध्यान, चिंतन, श्रद्धा के साथ सुरत को लगाने से सम्पन्न होता है, क्रियात्मक है। चित्त को सब ओर से समेटकर सत्य की संगत में लगा लें।

रामचरितमानस में सीता की शोध में तत्पर हनुमान की भेंट लंकिनी से हुई। **'मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।।'** वह रक्त का वमन करती हुई पृथ्वी पर बहुत दूर तक लुढ़कती चली गयी। हनुमान की मुष्टिका से कई बलशाली निशाचर मूर्च्छित हो गये थे, लेकिन वह तुरन्त सँभलकर खड़ी हो गयी। **'पुनि सँभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका।।'** उसने हाथ जोड़कर सशंकित होकर सविनय कहा–

जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।

जब रावण को ब्रह्माजी ने वरदान दिया था तो चलते समय मुझे एक पहचान दिया था कि–

बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे।।

उन्होंने कहा था कि कपि की मार से विकल होने पर समझ लेना कि अब निसिचरों का संहार होगा। आज मैं विकल हो गयी।

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।

आज मेरे बहुत सारे पुण्यों का उदय हुआ है जो राम-दूत को मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिली, जो सुख लव सतसंग।।

हे हनुमानजी! स्वर्ग और मोक्ष का सुख दोनों मिलाकर एक पलड़े पर रख दें और लव भर का सत्संग दूसरे पलड़े पर रख दें तो वह स्वर्गिक सुख उस सत्संग की बराबरी नहीं कर सकता। आज मुझे सत्संग प्राप्त हुआ है। मेरा अहोभाग्य है। वहाँ जो कुछ बोल रही थी, लंकिनी बोल रही थी, हनुमान तो कुछ बोले ही नहीं। यदि मुक्का मारना सत्संग है तब तो वह जरूर पा गयी होगी! क्या है सत्संग? वास्तव में शरीर ही एक सुव्यवस्थित ब्रह्माण्ड है,

जिसमें मायिक प्रवृत्ति ही लंका है। जब इसमें वैराग्यवान पुरुष प्रवेश करता है तो लौ में जो स्फुरण उत्पन्न करती है वही वृत्ति लंकिनी है। कैसी भी लौ लगी हो, तरंग पैदा हो जायेगी। यही है लंकिनी। जब रूप-रस-गंध-शब्द-स्पर्शवाली पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ एक मुष्टिका का रूप ले लें, संगठित हो जायँ, संयमित हो जायँ, आँखें बाहर देखती नहीं, कान बाहर सुनते नहीं तो तरंग पैदा कहाँ से होगी! जहाँ ये एक संयम में समाहित हुईं, लव में स्फुरण आना बन्द हुआ, परमात्मा में एक पल के लिए भी लौ लग गयी तो भगवान के असीम आनन्द का स्रोत स्रवित हो जाता है। फिर उस आनन्द को स्वर्ग का सुख भी भुलावा नहीं दे सकता। वह चल पड़ता है उस सम्पूर्ण आनन्द की ओर, जो अभी एक पल के लिए उसे मिला है। दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उस व्यक्ति को भरमा सके।

धरती को आसन किया, तम्बू आसमाना।
चोला पहने खाक का, रहे पाक समाना।।

फिर तो '**स्वर्ग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना।।**'– उसे सर्वत्र इष्ट का प्रसार ही दिखाई देने लगता है।

संक्षेप में, इस चित्तरूपी चोली की धुलाई के लिए राम-नाम का साबुन ले लें, दूसरी वस्तु है संतों का संग, उससे साधना का जो अभ्यास मिला है उसकी संगत करके लव भर के लिए सुरत स्थिर करें, आत्मा की संगति में अपने आपको लगा दें। लेकिन सद्‌गुरु के बिना यह संभव नहीं है इसलिए अपने गुरु को धोबी बना लें, फिर कैसा भी दाग हो, जन्म-जन्मान्तरों का दाग धुल जायेगा, जन्म-मृत्यु का बन्धन कट जायेगा।

आरम्भ में लोग राम-राम, ओम्-ओम् जैसे भी जप लेते हैं, किन्तु उन्नत अवस्था में जप का उतार-चढ़ाव श्वास पर होता है। गुरु महाराज कहते थे– जो श्वास का भजन नहीं जानते, महापुरुष लोग अपनी कुटिया में उस साधु को दो रोटी भी नहीं देते थे, क्योंकि ऐसा साधु स्वयं गुमराह है तो दूसरों को भी उल्टा-सीधा बताकर गुमराह ही तो करेगा। ऐसे साधुओं को महाराजजी भी प्रश्रय नहीं देते थे। हम निवेदन करते थे कि महाराजजी! किसी साधु-अभ्यागत

को दो रोटी के लिए आप क्यों भगाते हैं? गुरु महाराज कहते थे– तैं का जनिहे, कुपात्र को दान देने से दाता नष्ट हो जावा करत हैं। अस्तु, विशुद्ध नाम-जप का आधार श्वास है। बैखरी में नाम व्यक्त होता है, मध्यमा में कण्ठ से जपा जाता है किन्तु पश्यन्ती वाणी के जप का उतार-चढ़ाव श्वास-प्रश्वास पर है। श्वास आयी तो 'रा', गयी तो 'म'। प्रतीक्षा करो कि श्वास कब आयी। आयी तो 'रा', लौटी तो 'म'। एक भी श्वास हमारी जानकारी के बगैर व्यर्थ न जाने पाये। यही है,

रा से मैल कटे रग रग के, म से होत सफाई।

'रा' से एक-एक तन्तु का मैल कट जायेगा और 'म' कहने के बीच दूसरा संकल्प-विकल्प नहीं पैदा हुआ, तो **'म से होत सफाई'**– उतनी दूर की सफाई हो गयी, उतने देर के संस्कार समाप्त हो गये। हर श्वास से इस प्रकार धुलाई करने से धीरे-धीरे चित्तरूपी चोली के दाग धुल जाते हैं। साधक को धैर्य के साथ लगे भर रहना चाहिये।

धुलाई के अन्य उपाय भी संसार में प्रचलित हैं। कोई गंगा-स्नान करता है, कोई यमुना में, कोई ब्रदीनाथ तो कोई केदारनाथ। ये हमारे पवित्र तीर्थ हैं।

गंगा जमुना खूब नहाये, गया न मन का मैल।
आठ पहर जूझत ही बीता, जस कोल्हू का बैल।।

पवित्र नदियों के तटवर्ती निवासी पूर्वजों के समय से ही इन पवित्र नदियों में स्नान करते ही तो आ रहे हैं, किन्तु मन का मैल नहीं गया। नियमित स्नान करते जीवन बीत गया। जिस प्रकार कोल्हू का बैल घर के भीतर एक ही स्थान पर चलते-चलते पचासों कोस की यात्रा कर लेता है लेकिन कहीं पहुँचता नहीं, उसी प्रकार इन तीर्थों का आजीवन सेवन करने पर भी मन के मैल नहीं जाते। माना कि ये हमारे पवित्र तीर्थ हैं लेकिन सम्पूर्ण धुलाई के लिए संस्कारों को काटकर स्थिति दिलानेवाला श्वास का ही भजन है। आरम्भ में तीर्थ अच्छी चीज है।

तीरथ गये एक फल, संत मिले फल चारि।
सदगुरु मिले अनन्त फल, कहे कबीर बिचार।।

तीर्थ जाने से एक फल है कि पुण्य बढ़ता है। संत मिलने से अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों का रास्ता प्रशस्त हो जाता है, लेकिन कबीर कहते हैं कि सद्‌गुरु मिलने से जो अनन्त है, असीम है, वह परमात्मा ही सुलभ हो जाता है।

इस पथ में एक बात का विशेष महत्त्व है– गुरु की पहचान।

गुरु को जब तक गुरु नहीं जाना, गुरु आज्ञा नहिं आई।
जान लिया जब गुरु स्वरूप को, सहज मुक्ति होइ जाई।।
चोलिया काहे न धुलाई.....

मानना अलग है लेकिन क्रियात्मक जानना कुछ और है। गुरु जब तक हृदय से जागृत नहीं हुए तब तक उनकी महिमा जानने में नहीं आती, तब तक हृदय में गुरु की आज्ञा प्रसारित नहीं होती। गुरु जितना वाणी से बताते हैं, उतना ही सच नहीं है। वाणी से वह तभी तक बताते हैं जब तक हृदय से नहीं बताते। जब वे आपके हृदय से बोलने लग जाते हैं, उसका नाम है गुरु-आज्ञा। फिर तो आप विदेश में हों तब भी गुरु के समीप हैं। समुद्र में हों तब भी गुरु पास में हैं। यदि इस तरह की आज्ञा का प्रसारण नहीं हो रहा है तो पास में रहते हुए भी गुरु का महत्त्व समझ में नहीं आता। जब गुरु के स्वरूप को आपने जान लिया तो '**सहज मुक्ति होइ जाई**'। स्वरूप पकड़ में आ गया तो मुक्ति सहज हो जाती है। परमात्मा यदि परम धाम है तो सद्‌गुरु ही प्रवेश-द्वार हैं, भक्ति की जागृति हैं, पूर्तिपर्यन्त पथ हैं।

जिसकी चोली निर्मल हो गयी, अमर लोक लिये जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सदगुरु सरन सहाई।।
चोलिया काहे न धुलाई......

जिस किसी की चित्तवृत्ति चोली धुल गयी, शुद्ध हो गयी, निश्चल हो गयी तो वह अमरलोक में प्रवेश पा जाता है। गुरु महाराज का कहना था कि जो हृदय में हो, वही साधक की जबान पर भी होना चाहिए। हृदय में कुछ और, जबान पर कुछ और–वह साधु कभी कामयाब नहीं होता; क्योंकि कपट आप बाद में करेंगे, भगवान पहले से जानते हैं कि तुम क्या करने जा रहे हो। इसलिए जिसकी चोली निर्मल हो गयी, वह मृत्यु से परे अमरलोक

में प्रवेश पा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! सृष्टि मरणधर्मा है। '**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन॥**' *(गीता, 8/16)*– सृष्टि का रचयिता विधाता और यावन्मात्र जगत्, दिति की संतानें दानव, अदिति की संतानें देवता और मानव सब पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं, जन्मने और मरनेवाले हैं, किन्तु मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। आत्मा अमृत तत्त्व है। इसे शस्त्र नहीं काट सकते, अग्नि नहीं जला सकती, आकाश इसे विलय नहीं कर सकता। यह सदा रहनेवाला एकरस, मृत्यु से परे, अमृत तत्त्व, शाश्वत, सत्य, सनातन पुरुष है। हम कौन हैं? सनातनधर्मी! सनातन कौन है? केवल आत्मा! हम हैं शाश्वत के पुजारी। शाश्वत है केवल परमात्मा। हम हैं सत्य के अन्वेषी और परम सत्य है केवल आत्मा। सृष्टि नश्वर है इसलिए भजन एक परमात्मा का करना चाहिए। अमर है आत्मा अर्थात् परमात्मा। अन्तःकरण के अन्तराल में इसका निवास है इसलिए इसे आत्मा कहते हैं, सबमें रहते हुए सबसे परे है इसलिए परमात्मा, विभूतियों से युक्त है इसलिए विभु, सबका भरण-पोषण करता है इसलिए प्रभु, बृहद् है इसलिए ब्रह्म। ये तो विविध दृष्टियों से उसके सम्बोधन हैं। आप एक करोड़ नाम ले लें, भगवान का सम्पूर्ण नाम एक भी नहीं। इसलिए तो भगवान अमूर्त हैं, अरूप हैं, अनिर्वचनीय हैं। निर्मल चित्तवृत्ति अमरलोक में पहुँचा देती है अर्थात् आत्मा के आलोक में पहुँचा देती है।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सदगुरु सरन सहाई॥

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु की शरण, उनके प्रति समर्पण यही उस पथ पर एकमात्र सहायक हैं; और कोई नहीं। उनकी शरण-सान्निध्य से व्यक्ति अपने गंतव्य तक पहुंच जाता है।

एक महात्मा भ्रमण करते हुए एक पुरानी हवेली पर पहुँच गये जिसका मालिक अपनी फिजूलखर्जी के कारण अब निर्धन हो चला था। शाम को मालिक घर आया तो महात्मा को देखकर बोला– महाराज! क्षमा कीजियेगा, हम आपके लिए दो रोटी का भी प्रबन्ध कर सकने में असमर्थ हैं। चलिये, आपको मुखियाजी के दरवाजे पर ले चलते हैं। वहाँ आपको भोजन, पानी और दो गिलास दूध भी मिलेगा। महात्मा ने कहा– "भाई! हमें न दूध पीना है, न भोजन करना है। इसी तख्त पर बैठकर रात्रि में भजन करेंगे।"

महात्मा ने विचार किया– हवेली तो किसी भले आदमी की लगती है। इसके पास कुछ भी क्यों नहीं है? घर के मालिक ने बताया कि उसके पिता अच्छे ज्योतिषी थे, बहुत धन भी था किन्तु अपव्यय के कारण उसकी यह दशा हुई है। उसके पिताजी के रहते लोग उसे कर्ज भी दे देते थे, किन्तु अब कोई भी उसकी आर्थिक सहायता नहीं करता।

महात्मा ने पूछा– "क्यों रे! क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हारी कुण्डली बनायी है?" उसने कहा– "है तो!" महात्मा ने कहा– "ला, दिखा।" महात्मा भी ज्योतिषाचार्य थे, कुण्डली देखकर बोले– "क्यों रे! तुम्हारे पास कोई घोड़ा है क्या?" वह बोला– "हाँ महाराज! वह बबूल के नीचे बँधा है। इसी पर बैठकर श्राद्ध इत्यादि में जाया करता हूँ।" महात्मा ने कहा– "तू इसे बेच दे।" वह बोला– "अरे महाराज! यही तो कुल धनधाम है, पूर्वजों की निशानी है, अब आप इसके भी पीछे पड़ गये।" बहुत कहने-सुनने पर उसने घोड़ा बेच दिया। उसी से संत-सेवा की।

दूसरे दिन प्रातः उसने कहा– "गुरु महाराज! एक घोड़ा वहाँ और बँधा है।" महात्मा बोले– "ठीक है, उसको भी बेच। चाहे जितने में बिके, बेच दे।" तीसरे दिन एक और घोड़ा बँधा मिला। महात्मा बोले– "उसको भी बेच।" इस तरह पचासों घोड़े बिक गये। एक रात ब्रह्मा ने स्वप्न में उन महात्मा से कहा– "क्यों हमारे पीछे पड़े हो?" महात्मा बोले– "भगवन्! हमसे कौन-सी भूल हो गयी?" ब्रह्मा ने कहा– "उस पंडित का घोड़ा क्यों बिकवाते हो?" महात्मा ने कहा– "उसमें आपका क्या नुकसान है प्रभो!" ब्रह्मा बोले– "उसके कर्म में केवल एक घोड़ा लिखा है।" महात्मा ने कहा– "आपकी जय हो! हमने कब कहा कि उसे धन-धान्य दे दो। आप घोड़ा भेजते रहें।" ब्रह्मा ने सोचा कि ये महात्मा पीछा नहीं छोड़ेंगे। उस दिन से उस भक्त की व्यवस्था सुधर गयी, कुआदतें छूट गयीं और वह भी गुरु महाराज के निर्देशन में भजन करने लगा। अतः पहले संत-संग, फिर सत्संग!

प्राप्तिवाले हर महापुरुष की वाणी गीता का ही अनुवाद है। चित्त और मन पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। प्राचीनकाल में चित और चिति– दो

ही शब्द अन्तःकरण के लिए प्रयुक्त होते रहे। कालान्तर में अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चार भागों में विभाजित कर समझा जाने लगा। इसी को अन्तःकरण चतुष्टय भी कहते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ *(5/19)*

अर्जुन! उन पुरुषों के द्वारा जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है जिनका मन समत्व में स्थित है। समत्व में स्थिति और संसार को जीतने में क्या सम्बन्ध है? भगवान कहते हैं– '**निर्दोषं हि समं ब्रह्म**'– वह ब्रह्म निर्दोष और सम है, इधर इसका मन भी निर्दोष और सम की स्थितिवाला हो गया इसलिए वह ब्रह्म में स्थित हो जाता है। भगवान कृष्ण मन के समत्व की जो बात कहते हैं, निर्दोष बनाने की बात करते हैं, संत कबीर का वही आशय 'चोलिया की धुलाई' से है। इस धुलाई के लिए सत्संग बहुत आवश्यक है।

एक राजा का तोता मर गया। उन्होंने कहा– मंत्रीप्रवर! हमारा पिंजरा सूना हो गया। इसमें पालने के लिए एक तोता लाओ। तोते सदैव तो मिलते नहीं। राजा पीछे पड़ गये तो मंत्री एक संत के पास गये और कहा– भगवन्! राजा साहब एक तोता लाने की जिद कर रहे हैं। आप अपना तोता दे दें तो बड़ी कृपा होगी। संत ने कहा– ठीक है, ले जाओ। राजा ने सोने के पिंजरे में बड़े स्नेह से तोते की सुख-सुविधा का प्रबन्ध किया। ब्राह्ममुहूर्त में तोता बोलने लगा– ओम् तत्सत्....ओम् तत्सत् ... उठो राजा! उठो महारानी! दुर्लभ मानव-तन मिला है। यह सोने के लिए नहीं, भजन करने के लिए मिला है। 'चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर। तुलसीदास चंदन घिसै तिलक देत रघुबीर।।' कभी रामायण की चौपाई तो कभी गीता के श्लोक उसके मुँह से निकलते। पूरा राजपरिवार बड़े सवेरे उठकर उसकी बातें सुना करता था। राजा कहते थे कि सुग्गा क्या मिला, एक संत मिल गये।

हर जीव की एक निश्चित आयु होती है। एक दिन वह सुग्गा मर गया। राजा, रानी, राजपरिवार और पूरे राष्ट्र ने हफ्तों शोक मनाया। झण्डा झुका दिया गया। किसी प्रकार राजपरिवार ने शोक संवरण किया और राजकाज

में लग गये। पुनः राजा साहब ने कहा– मंत्रीप्रवर! खाली पिंजरा सूना-सूना लगता है, एक तोते की व्यवस्था हो जाती! मंत्री ने इधर-उधर देखा, एक कसाई के यहाँ वैसा ही तोता एक पिंजरे में टँगा था। मंत्री ने कहा कि इसे राजा साहब चाहते हैं। कसाई ने कहा कि आपके राज्य में ही तो हम रहते हैं। हम नहीं देंगे तब भी आप उठा ही ले जायेंगे। मंत्री ने कहा– नहीं, हम तो प्रार्थना करेंगे। कसाई ने बताया कि किसी बहेलिये ने एक वृक्ष से दो सुग्गे पकड़े थे। एक को उसने महात्माजी को दे दिया था और दूसरा मैंने खरीद लिया था। राजा को चाहिये तो आप ले जायँ।

अब कसाईवाला तोता राजा के पिंजरे में पहुँच गया। राजपरिवार बहुत प्रसन्न हुआ। सबको लगा कि वही तोता जीवित होकर चला आया है। दोनों की नासिका, पंख, आकार, चितवन सब एक जैसे थे। लेकिन बड़े सवेरे तोता उसी प्रकार राजा को बुलाने लगा जैसे वह कसाई अपने नौकरों को उठाता था कि उठ! हरामी के बच्चे! राजा बना बैठा है। मेरे लिये ला अण्डे, नहीं तो पड़ेंगे डण्डे! राजा को इतना क्रोध आया कि उसने तोते को पिंजरे से निकाला और गर्दन मरोड़कर किले से बाहर फेंक दिया।

दोनों सुग्गे सगे भाई थे। एक की गर्दन मरोड़ दी गयी, तो दूसरे के लिए झण्डे झुक गये, भण्डारा किया गया, शोक मनाया गया। आखिर भूल कहाँ हो गयी? अन्तर था तो संगति का! सत्संग की कमी थी।

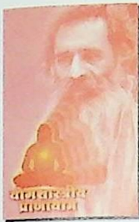
संगत ही गुण होत है, संगत ही गुण जाय।
बाँस फाँस अरु मीसरी, एकै भाव बिकाय॥

सत्य क्या है और असत्य क्या है? उस सत्य की संगति कैसे करें? उसकी जागृति और पूर्तिपर्यन्त पथरक्षक सद्गुरु होते हैं–

पूरा सदगुरु ना मिला, मिली न साँची सीख।
भेष जती का बनाय के, घर-घर माँगे भीख॥

इसीलिए संत कबीर कहते हैं कि 'चोलिया काहे न धुलाई?'

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥



योगशास्त्रीय प्राणायाम -
योगशास्त्रीय प्राणायाम में आपने बताया है कि यम, नियम और आसन के सधते ही श्वास-प्रश्वास का शान्त प्रवाहित होना ही प्राणायाम है। अलग से प्राणायाम नाम की कोई क्रिया नहीं है। यह योग चिन्तन की एक अवस्था है। इसी का समाधान इस पुस्तक में किया गया है।

३ भाषाओं में



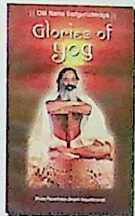
बारहमासी -
अपने पूज्य गुरु श्रीपरमानन्द जी महाराज की आकाशवाणी से प्राप्त भजन (ईश्वरीय गायन) बारहमासी का संकलन एवं उसकी व्याख्या की है। इसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथप्रदर्शन किया गया है।

हिन्दी भाषा में



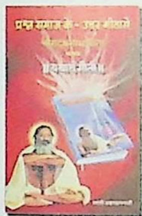
योगदर्शन-
प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या -
महर्षि पतञ्जलिकृत इस पुस्तक में बताया गया है कि 'योग' प्रत्यक्ष दर्शन है यह लिखने या कहने में नहीं आता। क्रियात्मक चलकर ही साधक समझ पाता है कि जो कुछ महर्षि ने लिखा है उसका वास्तविक आशय क्या है? साधनोपयोगी पुस्तक है।

४ भाषाओं में



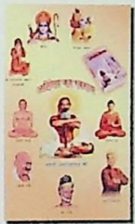
ग्लोरिस आफ योग -
हठ, चक्र, भेदन और योग, प्राणायाम, ध्यान के बारे में पूर्ण परिचय,

अंग्रेजी भाषा में



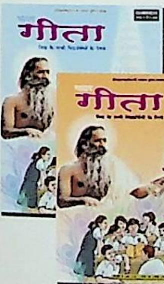
प्रश्न समाज के-
उत्तर गीता से -
इस पुस्तिका में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक कैसे भी प्रश्न हों, उनका गीता के आलोक में समाधान किया गया है।

हिन्दी भाषा में



अहिंसा का स्वरुप -
अहिंसा एक उलझा हुआ प्रश्न है। मूलत: यह यौगिक, आन्तरिक साधना का शब्द है। इस पुस्तक में हम पायेंगे कि हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अहिंसा को किस संदर्भ में लिया है।

४ भाषाओं में



बाल गीता-

यह पुस्तिका बालक के निर्मल मन में एक परमात्मा के प्रति पूर्ण आकर्षण पैदा कर समाज एवं साधना के क्षेत्र में सहज प्रवेश के लिए उपयोगी है। इसमें समर्पण का पाठ्यक्रम अंकित है जिससे बच्चों में धर्म-सन्देश का बीजारोपण, संस्कार पड़ेंगे। वे इस राह पर चलेंगे और अपने ही भगवत्-स्वरुप को प्राप्त कर लेंगे।

४ भाषाओं में



भजन से लाभ (नवयुवकों की जिज्ञासाएँ) -
इस पुस्तिका में नवयुवकों के अनेक प्रश्नों का संक्षेप में समाधान करते हुए भजन की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। यदि एक परमात्मा में मानसिक स्तर से लगते बन गया तो उन प्रभु के संरक्षण में साधना चलती रहेगी, बाह्य कार्यों में भी मदद मिलेगी और आवागमन से मुक्ति तो मिलना ही है क्योंकि ईश्वर-पथ में आरम्भ का नाश नहीं होता।

हिन्दी भाषा में

MP3 ऑडियो सिडिज्



११ भाषाओं में

श्री स्वामीजी के मुखारविन्द से नि:सृत अमृतवाणियों का संकलन वाल्यूम १ से ६० तक।



हिन्दी भाषा में

'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),
अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

